दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९३ तंत्री-जगजीवन बाउचंद दोशी, सावरकुंडला वर्ष २३ अंक नं० ४

अकेला हो तो भी....

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

दुष्कर्म के उदय से दु:खी होने पर भी जो मनुष्य संतुष्ट होकर इस अत्यंत पवित्र सम्यग्दर्शन में निश्चल स्थिति करता है अर्थात् सम्यग्दर्शन को धारण करता है, वह अकेला भी इस जगत में प्रशंसनीय है; परंतु जो अत्यंत आनंद को देनेवाले सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयरूपी अमृतामर्ग से (मोक्षमार्ग से) बाह्य हैं, तथा वर्तमान काल में शुभकर्म के उदय से प्रसन्न हैं—ऐसे मिथ्यामार्ग में गमन करनेवाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य बहुत हों, तब भी वे प्रशंसनीय नहीं हैं। इसलिये हे जीव! तू अकेला हो तो भी जिनमार्ग में दृढ़रूप से सम्यक्त्व की आराधना कर!

—श्री पद्मनन्दि मुनिराज

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अगस्त १९६७] वार्षिक मूल्य ३) (२६८) एक अंक २५ पैसा [श्रावण सं० २०२४

विषय-सूची

१ धर्मवात्सल्य का महान प्रतीक रक्षाबंधन
२ मोक्षमार्गप्रकाशक का पूर्णतया प्रामाणिक आधुनिक हिन्दी अनुवाद
३ आचार्यकल्प पंडित प्रवर श्री टोडरमलजी का कुछ परिचय
४ संत सोते जीवों को जगाते हैं
५ आत्मा क्या है और वह क्या करता है
६ भजन
७ आत्मा को साधने की रीत
८ क्रोधादि से बचने का उपाय आत्मचिंतन
९ श्री भक्तामर स्तोत्र
१० विविध वचनामृत
११ सच्ची कमाई
१२ दस लक्षण धर्म
१३ सोलह कारण भावना
१४ रत्नत्रय की आराधना का पर्व
१५ स्थितिकरण
१६ दसलक्षण धर्म
१७ आराधना की भावना
१८ ज्ञानी शूरवीर होता है
१९ हँसमुख की फरियाद
२० शीघ्र मोह नष्ट हो ऐसा उपदेश
२१ अंतर्मुख अवलोकते (देखते)
२२ कहानी १२वीं (२६ राजपुत्रों के साथ वज्रबाहु का वैराग्य)
२३ समाचार संग्रह

सोनगढ़ सुवर्णपुरी समाचार

तारीख ४-८-६७ परमोपकारी पूज्य स्वामीजी सुख शांति में विराजमान हैं। शास्त्र सभा में सवेरे श्री पुरुषार्थसिद्धयुपाय तथा दोपहर को श्री समयसारजी शास्त्र पर प्रवचन होता है। वीर शासन जयंती उत्सव हर साल माफिक आनंद उल्लास सहित मनाया गया था।

दशलक्षण पर्यूषण पर्व इस साल भी भाद्रपद सुदी पंचमी से १० दिन तक मनाया जावेगा।

दशलक्षण पर्व में

जहाँ पर प्रवचनकार विद्वानों की आवश्यकता हो, आपके समाज और संस्था के नाम से पत्र दीजिये।

पता—प्रचार विभाग, दिगम्बर जैन मुमुक्षु महामंडल
ठि० श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

धार्मिक प्रौढ़ जैन शिक्षा वर्ग में पाठ्यपुस्तक

श्रावण सुदी ५ से २० दिन तक चलने वाले जैन शिक्षण शिविर में निम्नप्रकार ग्रंथ चलेंगे।

(१) उत्तम वर्ग में— १ जैनतत्त्वमीमांसा में से क्रमनियमित पर्याय मीमांसा और सम्यक्नियत का स्वरूप प्रकरण ७-८

२- जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग ३ अनेकांत और स्याद्वाद अधिकार।

(२) मध्यम वर्ग में— १- जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १, अध्याय ३ पर्याय अधिकार। २ द्रव्यसंग्रह।

(३) जघन्य और प्रथम वर्ग— छहढाला और लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका। शिक्षार्थी भाईयों से प्रार्थना है कि पुस्तकें आपके पास हों तो लेते आवें।

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

अगस्त : १९६७ ☆ वर्ष २३वाँ, श्रावण, वीर नि०सं० २४९३ ☆ अंक : ४

धर्म वात्सल्य का महान प्रतीक रक्षाबंधन

[वात्सल्य-पूर्णिमा, श्रावण शुक्ला १५]

आज सारे जैन समाज को जिसकी विशेष जरूरत है, ऐसा वात्सल्य का अमृतसिंचन करता महान् जैन-पर्व श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को आ रहा है... प्रत्येक वर्ष की इस वात्सल्य-पूर्णिमा के समय मानों साक्षात् विष्णुकुमार मुनिराज आकर अपने को वात्सल्य का पवित्र सन्देश सुना जाते हैं। चक्रवर्ती के ये पुत्र राजपाट छोड़ चैतन्य की साधना में ऐसे मस्त थे कि महान विक्रियाऋद्धि प्रगट हो जाने पर भी उसकी खबर तक नहीं थी। इनके सम्यक्त्व सूर्य का तेज वात्सल्यादि अष्टांगों से झलकता था। इन विष्णुकुमार मुनिराज की जन्मनगरी में जब अकंपनाचार्यादि ७०० मुनिवरों के संघ पर चार मंत्रियों द्वारा घोर उपद्रव्य हो रहा था, मुनिवर अकंपरूप से समाधिभाव में स्थित थे। घोर उपद्रव से हस्तिनापुरी के समस्त श्रावकों ने भी अन्न का त्याग किया था, और आकाश का नक्षत्र भी कांप उठा था, इस समय मिथिलापुरी में श्रुतसागर आचार्य निमित्तज्ञान द्वारा मुनिवरों का उपद्रव जानते हैं और उनका हृदय मुनिसंघ के प्रति वात्सल्य से ऐसा उभरा कि रात्रि को मौन तोड़कर भी 'हा!' ऐसा उद्‌गार उनके मुख में से निकल पड़ा। विष्णु मुनि द्वारा ही इस उपसर्ग से मुनियों की मुक्ति हो सकेगी। ऐसा जानकर उन्होंने एक क्षुल्लकजी को उनसे प्रार्थना करने के लिये भेजा। विष्णु मुनिराज को वात्सल्य उमड़ आता है... ७०० मुनियों की रक्षा के लिये स्वयं मुनिपना छोड़ थोड़े समय के लिये श्रावक बनते हैं। युक्ति से बलिराजा को वचनबद्ध करके ७०० मुनियों की रक्षा करते हैं, इतना ही नहीं, वत्सलता से बलिराजा बगैरह को भी धर्म प्राप्त कराकर उनका भी उद्धार करते हैं। हस्तिनापुरी जय जयकार से गूँज उठती है। फिर से आनंद मंगल होता है। और स्वयं का मुनिरक्षा का कार्य पूरा करके तुर्त विष्णुकुमार फिर से मुनिपद में स्थिर होते हैं, और ऐसी उग्र साधना करते हैं कि केवलज्ञान प्रगट होता है।

मुनिरक्षा का और वात्सल्य का यह महान दिवस ऐसा प्रसिद्ध बना कि लाखों-करोड़ों वर्ष बीत जाने पर भी आज भारत भर में यह आनंद से मनाया जाता है। संसार में भाई-बहिनों का निर्दोष वात्सल्य, वात्सल्य भाव का सबसे बड़ा प्रतीक है। जहाँ वात्सल्य हो, वहाँ रक्षा की भावना होती ही है। ऐसा यह वात्सल्य का पर्व सर्वत्र वात्सल्य का पूर बहाये!

धर्मवत्सल संतों को नमस्कार हो!

मोक्षमार्गप्रकाशक का पूर्णतया

प्रामाणिक आधुनिक हिन्दी अनुवाद

(१) 'जैनदर्शन' पत्र के दिनांक १२-६-६७ के पृष्ठ तीन पर अजमेर निवासी श्री सुजाणमल सोनी का ''सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित आचार्यकल्प स्व० पंडित श्री टोडरमलजी द्वारा रचित 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथ के आधुनिक हिन्दी अनुवाद में मनमाना परिवर्तन'' ऐसा एक लेख प्रसिद्ध हुआ है और उसी लेख की प्रतिलिपि सहारनपुर में पेम्फलेट (परचा) के रूप में मुद्रण करा कराके वितरित की गई है। जैन तत्त्व जिज्ञासुओं की जानकारी के लिये सत्य बात क्या है, यह प्रसिद्ध करने में आती है।

(२) उक्त लेख में निम्न प्रकार का असत्य आक्षेप करने में आया है:—

'×××परंतु जो परिवर्तन 'मोक्षमार्गप्रकाशक' के सोनगढ़ द्वारा प्रकाशन में किया गया है, उसमें शब्द वक्य परिवर्तन के साथ भाव परिवर्तन भी साहसपूर्ण प्रयत्न किया गया है।'

इस विषय में प्रथम यह बताने की आवश्यकता है कि स्व० पंडितजी की स्वहस्त लिखित प्रति जयपुर में बड़े दीवानजी के मंदिर में विद्यमान है। उस संस्था के पास से वही प्रति मंगवाकर 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक' का आधुनिक हिन्दी अनुवाद करने में आया है। हमारी संस्था ने उस मूल प्रति पर से फोटो प्रिन्ट की तीन प्रतियाँ कराई हैं। उसमें से एक फोटो प्रिन्ट प्रति जयपुर के उपरोक्त भंडार को हमारी संस्था की ओर से भेंट देने में आई है। द्वितीय फोटो प्रिन्ट प्रति इस संस्था ने रखी है और तृतीय प्रति बम्बई के दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के पास है। इसप्रकार पंडितजी की स्वहस्त लिखित प्रति चार विद्यमान हैं।

(३) श्री सुजाणमलजी सोनी अजमेर के निवासी हैं। अजमेर से जयपुर मात्र ७० मील दूर है। और श्री सोनीजी कभी-कभी जयपुर जाते भी होंगे। उन्होंने जयपुर की मूल प्रति के साथ हमारे हिन्दी अनुवाद को मिलान करने का कष्ट ही नहीं किया है। यदि वे ऐसा कष्ट करते तो उनको यह मालूम हो जाता कि हमारे हिन्दी अनुवाद में कुछ भी परिवर्तन नहीं है। मात्र ढूँढारी भाषा का शब्दशः आधुनिक हिन्दी अनुवाद ही है।

(४) जब अनुवाद के अतिरिक्त किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं है, तब फिर 'भाव परिवर्तन का भी साहस पूर्ण प्रयत्न किया गया है' यह बात शत-प्रतिशत झूठ सिद्ध होती है।

(५) श्री मोक्षमार्गप्रकाशक की प्रस्तावना में लिखा है कि पंडितजी की स्वहस्त लिखित प्रति पर से आधुनिक हिन्दी में अनुवाद किया है, तब प्रत्येक तटस्थ तत्त्व जिज्ञासु की पवित्र जिम्मेदारी है कि वे पंडितजी की मूल स्वहस्तलिखित प्रति पर से मिलान करें किंतु इसप्रकार मिलान नहीं करके किसी भी धार्मिक संस्था पर आक्षेपों की बरसात बरसाना न्याययुक्त नहीं है, इतना ही नहीं किन्तु दिगम्बर जैन धर्म के वीतरागी सिद्धांत से भी विरुद्ध है।

(६) धर्म प्रेमी सज्जनों से यह संस्था विनती करती है कि हमारे अनुवाद के संबंध में जो भी उनको शंका हो तो वे जयपुर जाकर मूल स्वहस्तलिखित प्रति लेकर मिलान कर लेवें, फिर भी कोई शंका का स्थान रहे तो हमें लिखने की कृपा करें।

(७) श्री सोनीजी का संपूर्ण लेख पढ़ने से मालूम होता है कि उन्होंने इस संस्था के प्रकाशन संबंध में पूर्वग्रह बाँध लिया है और इसी दृष्टि से उन्होंने इस अनुवाद को देखा है। यदि वे मूल प्रति के साथ मिलान करते तो उन्हें मालूम हो जाता कि उनका इस संस्था के प्रति जो पूर्वग्रह है, वह मात्र कल्पित है और इस संस्था के प्रकाशन परिपूर्ण सत्य हैं।

(८) मूल प्रति के साथ मिलान नहीं करके उन्होंने सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली से प्रकाशित मोक्षमार्गप्रकाशक के तृतीय संस्करण से मिलान किया है जो कि उनकी मूलभूत भूल है। दिल्ली के प्रकाशन पर से हमने हिन्दी अनुवाद नहीं किया है। अत: उसके साथ हमारे अनुवाद को मिलान करना न्याय विरुद्ध है और पंडितजी की मूल प्रति के साथ मिलान करना न्याययुक्त है। हमारी संस्था के प्रति पूर्वग्रह होने के कारण इसप्रकार की भूल श्री सोनीजी से हुई है जो कि दिगम्बर जैन धर्म के इतिहास में नहीं हुई हो-ऐसी घटना है।

(९) 'जैन दर्शन' पत्र के उपरोक्त लेख को पढ़कर हमारे पंडितजी की स्वहस्तलिखित फोटो प्रिन्ट प्रति है, उसको हमने फिर देखा तो हमें ऐसा प्रतीत हुआ है कि हमारा अनुवाद शब्दश: सच्चा है।

(१०) सस्ती ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में से जो जो बातें लिखने में आई हैं, वे सब पंडितजी की स्वहस्तलिखित प्रति में नहीं हैं।

(११) हमारी संस्था के द्वारा 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक' का हिन्दी अनुवाद हो रहा था,

तब सस्ती ग्रंथमाला के तृतीय संस्करण को स्वहस्तलिखित प्रति से मिलान किया तो उसमें लिखी हुई बहुत सी बातें स्वहस्तलिखित प्रति से मिलती नहीं आती थी। जो-जो बातें स्वहस्तलिखित प्रति से नहीं मिली थी, उन सब की एक लिस्ट (नोंध) तैयार करके उस ग्रंथमाला की कमेटी को हमने भेजी थी। तब उसका चतुर्थ संस्करण का मुद्रण कार्य शुरु हो गया था और करीब १४० पृष्ठ तक छप भी गया था, किन्तु उन्होंने १४० पृष्ठ के बाद हमारा लिखा हुआ कितना ही सुधार स्वीकार करके चतुर्थ संस्करण छपाया है।

(१२) तृतीय संस्करण के पृष्ठ ३०० पर 'शुभोपयोग सर्वथा हेय नहीं है' ऐसा शीर्षक स्वहस्तलिखित प्रति में नहीं है। इसलिये चतुर्थ संस्करण में यह विषय पृष्ठ ३०० में निकाल दिया है।

(१३) तृतीय संस्करण के पृष्ठ ४९३ पर सब प्रकार के समकित की व्याख्या लिखी है किंतु यह पंडितजी की स्वहस्तलिखित प्रति में नहीं है और चतुर्थ संस्करण के पृष्ठ ४९२ में नोंध है कि 'यह विषय पंडितजी की मूल प्रति में नहीं है।' तृतीय तथा चतुर्थ संस्करण की नोंध के प्रति श्री सोनीजी ने ध्यान भी नहीं दिया तथा चतुर्थ संस्करण और शुद्धिपत्रक देखा नहीं, यह कैसी विचित्रता है!

(१४) पंडितजी की स्वहस्तलिखित प्रति में जो बातें नहीं हैं और अन्य छपी हुई प्रति में है, वह हमने अनुवाद में नहीं लिया है तो इसमें क्या दोष किया है? यह समझ में नहीं आता है।

(१५) श्री सोनीजी ने पृष्ठ ६, ८, २३, २७, ४९, ३०० और ४९३ में जो-जो बातें लिखी हैं, वे सब स्वहस्तलिखित प्रति में नहीं है। चतुर्थ, संस्करण के पृष्ठ २७ में 'पद्धति बुद्धि से' शब्द नहीं छपा था, किन्तु शुद्धिपत्र में 'पद्धति बुद्धि' ऐसा सुधार किया है। उसको श्री सोनीजी ने देखा नहीं जो कि वीतरागी न्याय से विरुद्ध है।

(१६) इसप्रकार हमारी संस्था द्वारा किया गया अनुवाद परिपूर्णरूप से सत्य है और वह सदैव सत्य ही रहेगा।

(१७) सस्ती ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित मोक्षमार्गप्रकाशक को श्री सोनीजी 'मूल ग्रंथ' कहते हैं, यह उनकी बड़ी भूल है। 'मूल ग्रंथ' तो पंडितजी की स्वहस्तलिखित प्रति ही है।

(१८) उपरोक्त लेख में हमारी संस्था के अन्य प्रकाशन के संबंध में जो आक्षेप किया

गया है, वह इस स्थान में संबंधरहित है, यह तो पूर्वग्रह रखनेवाले व्यक्तियों की संस्था का मात्र अभिप्राय है। यह विषय उक्त लेख में बिल्कुल निरर्थक है, फिर भी वस्तुस्वयप से अज्ञात जीवों को भ्रम में डालने के प्रयत्न से अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वर्तमान काल में समझदार व्यक्ति सब बातों का निर्णय तुलनात्मक दृष्टि से करते हैं। अत: यह संस्था सब जिज्ञासुओं को तुलनात्मक दृष्टि से सत्य निर्णय करने का अनुरोध करती है।

(१९) श्री सुजाणमलजी स्व० पंडित टोडरमलजी को आचार्यकल्प कहते हैं तथा 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक' को सच्चा प्रामाणिक जैन शास्त्र के रूप में स्वीकार करते हैं, यह अत्यंत आनंद की बात है। उसका अर्थ यह है कि पंडितजी की लिखी हुई सब बातें उनको मान्य होगी—जैसा कि पंडितजी ने सातवें अधिकार में 'मोक्षमार्ग दो नहीं है किन्तु मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार का है' आदि जो बातें लिखी हैं, उनको वे मानते ही होंगे। यदि ऐसी ही उनकी ही मान्यता हो तो हमें अत्यधिक आनंद होगा।

(२०) यहाँ के प्रकाशन के संबंध में पूर्वाग्रह के कारण कई आक्षेपात्मक लेख आते रहते हैं। उनका प्रत्युत्तर नहीं देना, ऐसी नीति का अनुसरण प्राय: हम करते हैं, किंतु खुद पंडितप्रवर आचार्यकल्प श्री टोडरमलजी सा० की हस्तलिखित प्रति पर से किया हुआ पूर्णतया प्रामाणिक अनुवाद जो कि प्रथम बार ही प्रकाशित हुआ है, उसको देखकर जैन समाज को हर्षित होना चाहिये, प्रत्युत उनको 'मनमाना परिवर्तन' कहकर यहाँ की संस्था के प्रति आक्षेप करना, यह सज्जन पुरुषों को शोभा नहीं देता। अत: जैन समाज की जानकारी के लिये हमने इतना स्पष्टीकरण कर दिया है कि जिससे सही परिस्थिति उनके ख्याल में आ सके।

मात्र आशा ही नहीं किन्तु हमें पूर्ण विश्वास है कि समाज यथार्थ तुलना कर लेंगे।

६-७-६७

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आचार्यकल्प पंडित प्रवर श्री टोडरमलजी का कुछ

परिचय

परम वीतरागी जैनधर्म के अनादिनिधन प्रवाह में तीर्थंकरों और संतों ने आत्महित के कारणभूत आध्यात्मवाणी का प्रवाह बहाया है। तीर्थंकरों और संतों का यह अध्यात्म संदेश ग्रहण कर अनेक जीव पावन हुये हैं। गृहस्थ-श्रावक धर्मात्माओं ने भी इस अध्यात्म रस के पुनीत प्रवाह को स्वयं की अध्यात्मरसिकता द्वारा प्रवाहित रखा है... उस अध्यात्मरस के पान से संसार के संतप्त जीव परम तृप्ति का अनुभव करते हैं।

तीर्थंकरों और मुनियों की तो क्या बात? उनका जीवन स्वानुभव द्वारा अध्यात्म रस से ओतप्रोत बना हुआ है। उसके बाद जैनशासन में अनेक धर्मात्मा-श्रावक भी ऐसे पैदा हुये हैं कि जिनका अध्यात्म जीवन और अध्यात्मवाणी अनेक जिज्ञासुओं को अध्यात्म की प्रेरणा जगाते हैं। उनमें से अध्यात्मरसिक विद्वान श्रावक पंडित श्री टोडरमलजी और पंडित श्री बनारसीदासजी, इन दोनों का संक्षिप्त जीवन परिचय यहाँ देने में आता है। इन दोनों की लिखी 'अध्यात्म वचनिका (चिट्ठी)' के ऊपर पूज्य कानजीस्वामी ने अध्यात्मरस से भरा हुआ प्रवचन किया है। संसार के सब रसों की अपेक्षा वह रस कितना सर्वोत्कृष्ट है और उसका स्वाद कितना शांतरस से भरपूर (स-रस) है, यह जिज्ञासुओं को प्रवचन में दिखेगा। उसमें सम्यक्त्व-संबंधी और निर्विकल्प स्वानुभव-संबंधी जो आत्मस्पर्शी चर्चायें भरी हैं, वह सम्यक्त्व-पिपासु जीवों को वास्तव में अत्यंत आह्लादकारी हैं। स्वानुभव का और सम्यक्त्व का कोई अद्भुत अचिंत्य महिमा का झरना (स्रोत) गुरुदेव ने उस प्रवचन में बहाया है, और उसके द्वारा स्वानुभवी संतों की परिणति का साक्षात् दर्शन कराया है।

पंडित श्री टोडरमलजी ने साधर्मियों के पास जो पत्र लिखा है, उसमें अध्यात्मचर्चा का तथा साधर्मी के प्रति का प्रेम दिखाई देता है। अध्यात्मरसिक जीव उस समय भी बहुत ही थोड़े थे; जो थे उनको भी एक-दूसरे का संपर्क और समागम बहुत ही मुश्किल से बन सकता था, क्योंकि उस जमाने में आज के जैसी आवागमन की सुविधा नहीं थी। २०० वर्ष पहले यह पत्र

लिखा था, तब डाक की भी सुविधा नहीं थी; हलकारे द्वारा एकाध महीने में मुश्किल से पत्रोत्तर बन सकता था। ऐसी परिस्थिति में लम्बे समय में जब हलकारा आध्यात्मरसिक साधर्मी का पत्र लेकर आता होगा, उस पत्र के हाथ में आते ही जिज्ञासु कैसे आनंदित होते होंगे! साधर्मी का पत्र प्राप्त होते ही पंडितजी लिखते हैं 'भाईश्री ऐसे प्रश्न तुम्हारे जैसे ही लिख सकते हैं। यहाँ वर्तमान काल में अध्यात्मरस के रसिक जीव बहुत ही थोड़े हैं। धन्य है उनको जो स्वानुभव की बात भी करते हैं।'

अहा, स्वानुभव की जो चर्चा करे, उसको भी धन्य कहा, तो जो स्वानुभवरूप साक्षात् परिणमे-स्वयं अध्यात्मरूप बने-ऐसे संत की महिमा की क्या बात? और ऐसे संतों का साक्षात् समागम तथा उनके चरण की साक्षात् उपासना, और उनकी वाणी का साक्षात् श्रवण अपने को मिला तो अपने कैसे धन्य भाग!

पंडित श्री टोडरमलजी पत्र के अंत में लिखते हैं 'जहाँ तक मिलना नहीं हो, वहाँ तक पत्र तो शीघ्र ही लिखा करो। साधर्मी को तो परस्पर चर्चा ही चाहिये।' इसके ऊपर से साधर्मी का समागम कितना दुर्लभ था और उसके पत्र का कितना उत्साह रहता था, इसका ख्याल आता है।

उस समय बैलगाड़ी का और ऊँट का युग था। आज वायुयान और रॉकेट का युग है। आज तो भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक थोड़े ही घंटों में वायुयान-मुसाफिरी से पहुँचा जाता है, हजारों मील दूर बैठे-बैठे भी टेलीफोन से सीधी बातचीत हो सकती है। उस समय एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाते-जाते बैलगाड़ी से अनेक महीने लग जाते थे; संदेश का आदान-प्रदान भी लम्बे समय बाद हो सकता था। अर्थात् उस समय साधर्मी के मिलने का अथवा साधर्मी के संदेश की प्राप्ति का जो अनोखा आह्लाद होता था, उसका ख्याल आज के युग में आना मुश्किल है।

पंडित श्री टोडरमलजी की लिखी हुई रहस्यपूर्ण चिट्ठी श्री कानजीस्वामी के हाथ में जब प्रथम बार आई और उनने पढ़ी, तो तुर्त ही उनको आह्लाद हुआ कि वाह! ऐसी चिट्ठी! इसकी कीमत क्या हो? ज्ञान के अर्थी को उसकी यथार्थ कीमत होनी चाहिये। अहो, उसमें तो मानों हीरे के कण भरे हैं! उस समय (चालीसेक वर्ष पहिले) भी ऐसे साहित्य की प्राप्ति दुर्लभ थी जिसके कि कारण से वह चिट्ठी स्वामीजी ने लिख ली थी।

जिस पत्र के जवाबरूप पंडितजी ने यह चिट्ठी लिखी है, वह पत्र सीधा पंडित टोडरमलजी के पास नहीं लिखा गया था, परंतु मुलतान के भाईयों ने जहानाबाद के रामसिंहजी

भुवानीदासजी के पास उक्त पत्र लिखा। उनकी दूसरे साधर्मियों के साथ बातचीत हुई, और वहाँ दूसरे साधर्मियों ने जहानाबाद से पंडित टोडरमलजी को जयपुर लिखा, अर्थात् मूल पत्र लिखा जाने के बाद फिरता-फिरता तीसरी भूमिका में पंडितजी को मिला है, और पंडितजी ने उसके उत्तर सीधे मुलतान के भाईयों को लिखे हैं—

(जो कि जहानाबाद के भाईयों के पास भी जुदा उनने लिखा ही होगा) इसप्रकार मुलतान के भाईयों को अपने पत्र का उत्तर मिलने में सहज ही दो-तीन महीने निकल गये होंगे। इतने लम्बे समय के बाद जब अपने जिज्ञासा से भरे हुये प्रश्नों के उत्तरस्वयप आध्यात्म-रस-भरपूर चिट्ठी साधर्मियों को प्राप्त हुई होगी, उस समय अध्यात्म संदेश पढ़ कर मुलतान के भाईयों को कितना हर्षोल्लास हुआ होगा। आज २०० वर्ष बाद भी उस चिट्ठी की हस्तलिखित प्रति प्राचीन शास्त्र भंडारों में सुरक्षित रखी है-उस पर से ख्याल में आयेगा कि साधर्मी उस चिट्ठी को कितनी कीमत गिनते थे। ऐसी दो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों पर से खुरई (सागर, मध्यप्रदेश) के 'कर्तव्य प्रबोध कार्यालय ने' लगभग ५० वर्ष पहिले (वीर सं० २४४२ में) वह 'रहस्यपूर्ण चिट्ठी' प्रकाशित की थी। उसमें प्रकाशक लिखते हैं कि—

'यह चिट्ठी कितनी महत्त्वपूर्ण है, इसको प्रेमी पाठक स्वयं अवलोकन करके जान सकेंगे। परंतु यहाँ हम इतना अवश्य कहेंगे, कि यदि इसी तरह की कोई प्राचीन विद्वान् की कृति आज यूरोप आदि देशों में किसी को प्राप्त होती, तो सारे देश और समाचार पत्रों में धूम मच जाती।'

पचास वर्ष पहिले प्रसिद्ध होनेवाली यह चिट्ठी विशेष प्रचार में नहीं आई थी, लेकिन अब पूज्य स्वामीजी ने तीन बार इस पर प्रवचन करके इसकी महिमा प्रसिद्ध की है, और इसके रहस्य को खोला है।

इस रहस्यपूर्ण चिट्ठी के विद्वान लेखक पंडित श्री टोडरमलजी का संक्षिप्त परिचय यहाँ देते हैं।

अनेक शास्त्रों के रहस्य का मिलान करके मोक्षमार्गप्रकाशक - जैसे शास्त्र की जिनने रचना की। उन पंडित श्री टोडरमलजी ने शिथिलाचार-समक्ष निर्भयतापूर्वक चुनौती देके, आध्यात्मिक आंदोलन द्वारा तथा महान विपुल साहित्य-रचना के द्वारा जैन समाज में क्रांति की लहर फैलाई थी। गृहस्थ होने पर भी जैन समाज में उनका स्थान एक आचार्य-समान गिनने में आता है। उनका जन्म विक्रम संवत १७९७ में जयपुर के 'गोदिका' परिवार में हुआ था।

पिताजी का नाम जोगीदास और माताजी का नाम रंभादेवी था। उनका परिवार 'ढोलाका परिवार' के नाम से विख्यात था। आज भी जयपुर में उनके वंश में श्री छगनलालजी लादूलालजी ढोला हैं। उनके शिक्षा गुरु बंशीधरजी थे जो मैनपुरी (आगरा के पास) से जयपुर आकर रहे थे। पंडितजी असाधारण प्रतिभाशाली थे। छोटी उमर में ही उनने बहुत अध्ययन कर लिया था। सं० १८११ में माघ कृष्णा पंचमी को जब उनने मुलतान के साधर्मी भाईयों के पास अध्यात्म चर्चा से भरपूर चिट्ठी लिखी, तब उनकी उमर मात्र १४ या १५ वर्ष की थी। इतनी छोटी उमर में लिखी गई अध्यात्म शास्त्र के मर्म से भरी हुई चिट्ठी यह बताती है कि वे कितने विद्वान् और अध्यात्मरसिक थे।

सं० १८११ के आसपास अर्थात् १४-१५ वर्ष की उमर में ही वे जयपुर राज्य के सिधाणा गाँव जाकर एक सेठ के यहाँ नौकरी करने लगे। उस समय साधर्मी भाई रायमल कि जो १३-१४ वर्ष की उमर में ही शास्त्राभ्यासी थे और धर्म का रहस्य समझने की जिज्ञासा से अनेक जगह घूम रहे थे, वे पंडित टोडरमलजी को मिले, और उनके परिचय से प्रसन्न होकर उनने लिखा कि—'टोडरमलजी के ज्ञान की ममिा अद्‌भुत देखी।' उसके बाद ब्रह्मचारी भाई रायमलजी ने उनको गोम्मटसार वगैरह शास्त्रों की टीका लिखने का आग्रह किया और पंडित टोडरमलजी ने हिन्दी भाषा में टीका लिखना शुरु की। जैसे-जैसे वे टीका लिखते जाते थे, वैसे-वैसे भाई रायमलजी वगैरह उसे पढ़ते जाते थे। सं० १८१५ तक के तीनेक वर्ष में अर्थात् मात्र १५ से १८ वर्ष की छोटी उमर में तो उनने गोम्मटसार के ३८ हजार श्लोक, लब्धिसार—क्षपणासार के १३ हजार श्लोक, और त्रिलोकसार के १४ हजार श्लोक, ऐसे कुल ६५००० पैंसठ हजार श्लोक प्रमाण (सम्यग्ज्ञान चंद्रिका) टीका रची। मात्र १५ वर्ष की वय में गोम्मटसार-जैसे महान शास्त्र की टीका लिखना यह श्रुताभ्यास का असाधारण प्रेम और विद्वत्ता बताती है। भाई रायमल्लजी लिखते हैं 'इस समय इस नि:कृष्ट काल में पंडित टोडरमलजी के ज्ञान का क्षयोपशम विशेष है। गोम्मटसार ग्रंथ का पढ़ना पाँच सौ वर्ष पहिले था, लेकिन उसके बाद बुद्धि की मंदता के कारण भाव सहित पढ़ना रुक गया, अब फिर (टोडरमलजी द्वारा) उसका उद्योत हुआ। वर्तमान काल में यहाँ धर्म का जैसा निमित्त है, वैसा अन्यत्र नहीं।'

इसके ऊपर से यह स्पष्ट होता है कि पंडित टोडरमलजी कितने प्रतिभाशाली थे और धर्म प्रचार की उनको कितनी लगन थी। उस समय जयपुर में इन्द्रध्वज पूजा का बड़ा उत्सव हुआ। यह उत्सव जयपुर के इतिहास में बहुत भव्य था, उसमें पूजन की वेदी ६४ गज (लगभग

सवा सौ फुट) लम्बी चौड़ी थी। (अर्थात् आजकल पंचकल्याणक में अपन जिस पर मंडल करते हैं, उसकी अपेक्षा १०० गुना बड़ा!) और उसमें त्रिलोकसार-ग्रंथ अनुसार रचना करने में आयी थी। इस उत्सव की निमंत्रण पत्रिका में (सं० १८२१ की माघ कृष्णा नवमी) लिखा है कि यहाँ भाईजी टोडरमलजी के ज्ञान का क्षयोपशम अलौकिक है। उनने गोम्मटसारादि अनेक ग्रंथों के पूरे लाख श्लोक प्रमाण टीकायें बनायी हैं, और अभी दूसरे पांच-सात ग्रंथों की टीका बनाने का विचार है, वह आयु की अधिकता होगी तो बनेगी। अलावा धवल महाधवलादि ग्रंथों को प्रगट में लाने का प्रयत्न उनने किया है, तथा उनके पास दक्षिण देश से दूसरे पाँच, सात ग्रंथ ताडपत्र में कर्नाटकी लिपि में लिखे हुय पधारे हैं। उनको '**मलजी**' पढ़ते हैं और उसका यथार्थ व्याख्यान करते हैं तथा कर्नाटकी लिपि में लिख लेते हैं। न्याय, व्याकरण, गणित, छंद, अलंकार वगैरह का ज्ञान उनको है। महान बुद्धि के धारक ऐसे पुरुषों का इस काल में होना दुर्लभ है। प्रतिष्ठा महोत्सव की निमंत्रण पत्रिका में हुये इस उल्लेख पर से ख्याल में आयेगा कि जैन समाज में पंडितजी का स्थान कितना महत्त्व का था, और जयपुर का जैन समाज उनके कारण कितने गौरव का अनुभव करता था। इस समय के माफिक द्रुतगति-प्रवास के अथवा संदेश व्यवहार के साधन उस जमाने में नहीं थे। ऐसे उस साधनहीन काल में भी दक्षिण देश के धवलादि सिद्धांत ग्रंथों के उद्धार की योजना पंडित श्री टोडरमलजी ने बनायी थी और जयपुर से कितनेक भाईयों को वहाँ भेजा था। उसमें दो हजार रुपया खर्च किया और उस कार्य में पाँच वर्ष लगे। उसमें से एक व्यक्ति की तो वहाँ ही (दक्षिण में) मृत्यु हुयी, लेकिन उसमें सफलता नहीं मिली। तो भी श्रुत की तीव्र भक्ति से प्रयत्न चालू रखा। यदि अल्पआयु में उनका अकाल अवसान न हुआ होता तो जरूर उनके समय में ही वे 'षट्खंडागम' आदि ग्रंथ जयपुर में आ गये होते, तो भी कर्नाटक लिपि में जो ग्रंथ आये, उनको वे पढ़ने लगे और उनकी लिपि लिखने लगे, यह कितने आश्चर्य की बात है।

उपर्युक्त गोम्मटसारादि ग्रंथों की टीका के बाद उनने 'आत्मानुशासन' की तथा 'पुरुषार्थसिद्धि उपाय' की हिन्दी टीका (जयपुर ढूंढारी भाषा में) लिखी तथा 'मोक्षमार्गप्रकाशक' जैसे सर्वोपयोगी महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की। इस प्रकार श्रीमान् पंडितजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक - जैसे ग्रंथों द्वारा शुद्ध जैन मार्ग का प्रकाश किया, और शिथिलाचार, पाखंड तथा असत्यमार्ग का निषेध करके जो महान क्रांति की, वह सहन नहीं

होने से कितनेक विद्वेषी विधर्मियों ने षड्यंत्र द्वारा बड़ा अत्याचार किया। इतना ही नहीं, पंडितजी पर खोटा आक्षेप लगाकर छल कपट द्वारा राजा को उनके विरुद्ध भड़काया, जिसके परिणामस्वरूप उनको हाथी के पैर नीचे कुचलाकर मार डालने में आया। (सं० १८२४ कार्तिक सुदी सप्तमी उनका मृत्यु दिन माना जात है।) उस समय उनकी उमर २७ वर्ष की थी। जैन गगन का एक चमकता सितारा पूर्णरूप से चमके उसके पहिले ही अस्त हो गया। तो भी इतनी थोड़ी आयु में उनने जैन साहित्या की महत्वपूर्ण रचनाओं द्वारा श्रुतदेवीमाता की और जैन समाज की पुष्कल कीमती सेवा की है। जयपुर में उनकी शास्त्र सभा में ८०० जितने तत्त्वरसिक श्रोता रहते थे; गोम्मटसार वगैरह शास्त्रों का अभ्यास शुरु हुआ, तब महिलायें भी तत्त्वचर्चा में रस लेने लगी थीं। इस साल जयपुर (राज०) में गोदीका परिवार द्वारा श्री टोडरमलजी स्मारक भवन बहुत विशाल और उत्तम ढंग से बना है। जिसका उद्घाटन पूज्य श्री कानजीस्वामी के शुभ हस्त से वीर सं० २४९३ फाल्गुन सुदी २ को हुआ है। भवन की विशालता और कला, साथ में जिनमंदिर जो देखते ही बनता है, उस भवन द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित आध्यात्मिक साहित्य के प्रचार का ध्येय अपनाने में आया है। पंडितजी का महान ग्रंथ मोक्षमार्गप्रकाशक ही उनका परिचय है, फिर भी ऐसे अध्यात्म रसिक महान श्रुतोपासक श्रीमान् पंडित टोडरमलजी संबंधी कितना ही परिचय दिया है। ऐसे ही दूसरे एक अध्यात्म रसिक विद्वान पंडित श्री बनारसीदासजी का परिचय आगमी अंक में देंगे।

मोक्ष की शांतिरूपी ठंडी हवा

ग्रीष्म के तीव्र ताप से संतप्त जीव सरोवर के किनारे जाता है, वहाँ उसको ठंडी हवा आती है और विश्वास हो जाता है कि अब पानी पास में ही है... वैसे संसार भ्रमण के तीव्र दु:ख से संतप्त हुये जिस जीव को आत्मा के धर्म की यथार्थ रुचि हुई– स्व की ओर अग्रसर हुआ, उसको अंतर से अपूर्व शांति की गूँज आती है, मोक्ष के निकट की हवा आती है, कभी अनुभव नहीं की, ऐसी शांति उसके परिणाम में वेदन होती है और अब मोक्ष पास में ही है—ऐसा उसको नि:संदेह विश्वास हो जाता है।

संत, सोते जीवों को जगाते हैं

(श्री समयसार कलश-टीका प्रवचन)

आचार्यदेव सोते हुए जीवों को संबोधन करते हैं कि अरे जीवों! जागो.. अपने चैतन्यनिधान को देखो। परभावों को निजपद मानकर उस ओर दौड़ रहे हो, परंतु लौटो.. लौटो... उन रागादि विभावों में तुम्हारा पद नहीं है। तुम्हारा पद तो इस अत्यंत सुंदर चैतन्यधाममय है; इस ओर आओ! इसप्रकार संत करुणापूर्वक, परभावों की ओर वेगपूर्वक दौड़ते हुए प्राणियों को वात्सल्य से पुकार कर लौटते हैं और निजपद दिखलाकर सिद्धि के पथ पर ले जा रहे हैं।

स्वयं स्वानुभव से जो तत्त्व जाना है, उसे बतलाते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि—हे जीवों! अनादि से स्वतत्त्व को भूलकर मोह में सो रहे हो... अब तो जागो। और अंतर में विद्यमान अपने अत्यंत शुद्ध तत्त्व है, उसे देखो। इन शरीरादि में या रागादि परभाव में तुम्हारा निजपद नहीं है; तुम्हारा निजपद तो शुद्ध चैतन्य धातु में है। सिद्धपद अंतर में से प्रगट होता है, कहीं बाहर से नहीं आता। ऐसे सिद्धपद के स्वामी आत्मा को भूलकर तुम राग के स्वामी हुए... शुद्ध आत्मा को न देखनेवाले हे अंध प्राणियों! तुम मोह से अंध बनकर निजपद को भूलकर, परभाव को ही निजपद मानकर उसमें लीन बने हो, परंतु यह पद तुम्हारा नहीं है; इसलिए तुम जागो और इधर आओ... इधर आओ! अंतर में जो अत्यंत शुद्ध चैतन्य-धातु है, वही तुम्हारा पद है, उसे स्वानुभव में लो।

संयोग तथा संयोग की उपाधि से हुए राग-द्वेषभाव, वह तेरा घर नहीं है, वह तेरा निवासस्थान नहीं है, उसमें तू नहीं है, तेरे लिये वह अस्थान है। चारों गति के जितने उपाधिभाव हैं, उनमें तू नहीं है, तू तो अपने शुद्ध चैतन्यभाव में है, उसी में तेरा निवासस्थान है; इसलिये हे अंध! अब तू जाग और प्रतिबोध प्राप्त कर! अपने स्वतत्त्व को देख! उसे स्वानुभव में ले।

सामान्यरूप से इक्कीस प्रकार के उदयभाव तथा विशेषरूप से असंख्य प्रकार के या अनंत प्रकार के जो उदयभाव, वह एक भी तेरा स्वरूप नहीं है, वे सब तो उपाधिरूप हैं; कोई

भी अनुकूल सामग्री या प्रतिकूल सामग्री, वह जीव का स्वरूप नहीं है; भगवान सर्वज्ञदेव ने तो जीव का स्वरूप उपयोगमय देखा है; उस उपयोग को कभी भी जड़ के साथ या राग के साथ एकमेकपना नहीं है; इसलिये उसमें एकत्वबुद्धि छोड़। आत्मा तो उपयोगमय है—इसप्रकार शुद्ध स्वसत्ता को देख। किसप्रकार देख ? कि स्वानुभव से देख।

अरे, तीन लोक को साक्षात् देखनेवाले भगवान सर्वज्ञदेव ने तो सर्व आत्मा सदा उपयोगस्वरूप है—ऐसा देखा है; संतों ने स्वानुभव से ऐसे ही आत्मा का अनुभव किया है और आगम में भी जीव को उपयोगस्वरूप बतलाया है।—इसप्रकार देव-गुरु और शास्त्र तीनों ने आत्मा को तो सदा उपयोगस्वरूप कहा है, परंतु देहस्वरूप या रागस्वरूप नहीं कहा; तो तू उसका देहरूप और रागरूप अनुभव क्यों करता है ? यह तो तेरा मोह है; मोह से अंध बनकर तू अपने स्वरूप को भूला है। यहाँ आचार्यदेव जगाते हैं कि हे जीव! अब तो जाग! अनादि से अभी तक तो मोह में सोता रहा और अंध बना, परंतु अब तो जागकर आँखें खोल! तेरा शुद्धस्वरूप संतों ने तुझे बारंबार बतलाया है, उसे सुनकर अब तो जाग... और मोहबुद्धि छोड़! पुनः पुनः करुणापूर्वक कहते हैं कि अरे भाई! यह तुझे कैसे शोभा देगा ? राजा राजसिंहासन के बदले कूड़े के ढ़ेर में निजपद मानकर भटकता फिरे, यह कोई शोभनीय है ? उसीप्रकार चैतन्यमय निजपद को भूलकर यह चैतन्यराजा परभाव में सोये, यह कहीं उसे शोभा देता है ? जिसप्रकार करोड़ों के मूल्य का हीरा कोई दो-चार रुपये में बेच डाले तो लोक में उसे मूर्ख कहा जायेगा, उसीप्रकार अनंत महिमावंत इस चैतन्य-हीरे को क्षणिक पुण्य जितना मानकर अज्ञानी राग में बेच देता है, वह महामूर्ख है। अनंत इंद्रपदों द्वारा भी जिसका मूल्यांकन न हो सके—ऐसा यह चिदानंदस्वभाव कि जिसका एक क्षण चिंतन करने से केवलज्ञानादि के परम निधान प्रगट हों—ऐसे निजपद को भूलकर अज्ञानी क्षणिकराग जितना अपने को मानकर, निज निधान को राग में बेच देता है। वह अंध प्राणी निज निधान को नहीं देखता। आचार्यदेव उसे परम करुणापूर्वक जगाते हैं कि हे अंध प्राणी! अब तू जाग.. हमने तुझे तेरा ध्रुवपद बतलाया उसे तू देख! जगत में जिसकी कोई तुलना न कर सके, ऐसे अपने स्वपद को तू अनुभव में ले।

आत्मा का स्वरूप शुद्ध उपयोगरूप है। शुद्धस्वरूपी आत्मा कथंचित् उपयोगरूप तथा कथंचित् रागरूप है—ऐसा द्विधापना नहीं है; आत्मा का शुद्ध पद सर्वथा उपयोगरूप है और रागादिरूप सर्वथा नहीं है, किंचित्मात्र नहीं है। उपाधिरूप रागादिभाव तो क्षणिक मायाजाल समान हैं, क्षण में उसका लोप हो जाता है, परंतु यह चैतन्यमय निजपद है, वह तो स्थायी है,

वह कहीं मायाजाल की भाँति क्षणिक नहीं है। अब ऐसे स्थायी निजपद को हे जीव! तू देख, अर्थात् इसी समय अनुभव में ले।

प्रश्न—मनुष्यपना तो दुर्लभ है; तो वह आत्मा नहीं है—ऐसा कैसे कहते हो?

उत्तर—वैराग्य के उपदेश में ऐसा कहा जाता है कि भाई! यह मनुष्य भव पाकर तू आत्मा का हित कर ले, क्योंकि मनुष्यपना दुर्लभ है। यहाँ शुद्धात्मा का स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं कि मनुष्यपना, वह आत्मा नहीं है; उपयोगपना ही आत्मा है। मनुष्यपना दुर्लभ है, यह बात सच है, परंतु वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है। 'मैं मनुष्य हूँ'—इसप्रकार कहीं मनुष्यपने के भाव में स्थित रहकर आत्मा की साधना नहीं होती, परंतु उपयोग, स्वरूप में आने पर आत्मा सधता है—उपयोगस्वरूप से आत्मा का अनुभव करे, तभी वह सधता है।

यह आत्मा चैतन्यस्वरूप है। पर्याय में जो शुभ-अशुभभाव करे, उनके द्वारा जो पुण्य-पाप कर्मों का बंध हो, और उनके फल में जो सुख-दुःख की प्राप्ति हो—उन सबसे (छहों बोलों से) आत्मा का स्वरूप भिन्न है। अज्ञानी अनादिकाल से उस संयोग को और संयोगी परभावों को ही अपना स्वरूप समझकर उनका आस्वादन करता है, परंतु वह सर्व अनुभव झूठा है, इसलिये उसमें आत्मा के स्वरूप का सच्चा स्वाद नहीं है। आत्मा स्वाद तो उन सबसे पार शुद्ध चैतन्यरस से भरपूर है। वह बतलाकर आचार्यदेव भव्य जीवों को संबोधन करते हैं कि अरे जीवों! लौटो... लौटो... उन रागादि विभावों में तुम्हारा पद नहीं है, तुम्हारा पद तो यह चैतन्यमय अत्यंत शुद्ध है, इस ओर आओ.. इस ओर आओ... रागादि अशुद्धपर्याय को आत्मा मानकर तुम उस ओर दौड़ रहे हो परंतु उस मार्ग पर मत जाओ... मत जाओ, क्योंकि वह मार्ग तुम्हारा नहीं है, वह स्वरूप तुम्हारा नहीं है। यह जो शुद्ध चैतन्यरूप से अनुभव में आता है, वही तुम्हारा पद है, वही तुम्हारा मार्ग है, इसलिये इस ओर आओ.. इस ओर आओ।

देखो तो सही, संत कैसी करुणा करके निजपद बतलाते हैं। परभावों की ओर वेगपूर्वक दौड़ते हुए प्राणियों को वात्सल्य से पुकार करके लौटाते हैं कि अरे जीवो! इस मार्ग से लौटो.. और इधर अंतरस्वभाव में आओ! जिसप्रकार मार्ग भूले हुए व्यक्तियों को कोई सज्जन आवाज देकर सच्चे मार्ग पर मोड़ता है; उसीप्रकार यहाँ सत्य स्वरूप का मार्ग भूलकर परभाव की ओर दौड़ते हुए जीवों को आवाज देकर संत सत्यमार्ग की ओर मोड़ते हैं। जैसा शुद्ध स्वरूप है, वैसा बतलाकर उस ओर बुलाते हैं कि अरे जीवो! इस ओर आओ। हम अपने समस्त वैभव से आत्मा का शुद्धपद बतलाते हैं, उसे अनुभव में लो! राग का अनुभव छोड़ो!●

आत्मा क्या है और वह क्या करता है ?

['समयसार कलश' ६२ का प्रवचन : गतांक नं० २ से चालू]

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका कार्य ज्ञान से बाहर नहीं होता। ज्ञान से अतिरिक्त अन्य भाव में आत्मा का कर्तृत्व मानना, यह अज्ञानी का मोह है। भेदज्ञान द्वारा 'ज्ञान'और 'परभाव' को भिन्न जानकर, जो परभाव का कर्तृत्व छोड़ता है और ज्ञानभावरूप से परिणमन करता है, वह ज्ञानी है।

अनादिकाल से जीव ने क्या किया ? स्वयं को भूलकर अज्ञान और राग-द्वेष किया है; चिदानंद तत्त्व का ज्ञान करके स्वसन्मुखरूप से आत्मा वीतरागी ज्ञानभाव का कर्ता होता है और वह ज्ञानभाव ही आत्मा का यथार्थ कार्य है।

ज्ञान से भिन्न 'पर' का कर्तृत्व मानकर दुनिया पागल बनी है। यह उसका मोह कहो अथवा पागलपन कहो। 'पर' का कर्त्ता आत्मा होता है, यह बात ही झूठी है। भाई, तेरी चैतन्य जाति क्या है, उसको तू जान। अपनी चैतन्य वस्तु को देखने के लिये हजार सूर्य जैसे अपने ज्ञाननेत्र को खोल। पर के काम का कौतूहल छोड़कर चैतन्यवस्तु को जानने का कौतुहल कर। अंतर में आनंद का स्तंभ चैतन्य कंद है, उसके अनुभव की अपूर्वता है। ऐसे आत्मा की जिसको अनुभूति हो, उसको ही द्वादशांग की उपलब्धि प्रत्यक्ष हो सकती है। बारह अंग की लब्धि शुद्धात्मा की अनुभूति बिना नहीं होती। दिव्यध्वनि में से निकले जो बारह अंग, उनमें भी भगवान ने शुद्ध आत्मा की अनुभूति ही करने को कहा है, और उसको ही 'मोक्षमार्ग' कहा है।

हे भाई, यह आत्मवस्तु अनुभव करने जैसी है, उसका तू निर्णय कर, उसकी महत्ता को लक्ष्य में लेकर उसकी रुचि कर, और तेरे प्रयत्न को उस ओर झुका। अंतर में शीतल-शीतल चैतन्यबिम्ब स्थिर है, जिसकी छाया में परम शांति और निराकुलता का वेदन है। ज्ञानस्वरूप आत्मा तो ऐसे कार्य को करे, वह उसका वास्तविक कार्य है।

ज्ञानमय कार्य के सिवाय दूसरा कार्य संसार का कारण है, दूसरा कार्य अर्थात् केवल शरीरादि जड़ का कार्य ही नहीं, अपितु शुभ-अशुभ रागादि भाव, उसको अज्ञानी अपना कार्य मानकर, उसका वह कर्ता बनता है, यह कार्य अज्ञानी का है। धर्मात्मा की दृष्टि शुद्ध स्वद्रव्य के ऊपर है, उस दृष्टि में उसको निर्मल भाव की उत्पत्ति होती है। वह निर्मलभाव ही धर्मी का कार्य है। यहाँ तो 'सच्चा आत्मा' उसी को कहा है कि जो निर्मल ज्ञानभाव को करे। रागादि-अशुद्धता

को करे, वह आत्मा का सच्चा स्वरूप नहीं। स्वभाव जैसा है, वैसा श्रद्धा-ज्ञान में लेते हुए उसकी जैसी निर्मल परिणति हुई, वहाँ धर्मी जीव अबंध हुआ, उसको बंध नहीं होता। शुद्ध स्वभाव को प्रतीति में लेकर अनुभव में उसका स्वाद चखकर उसके रंग से धर्मी जीव चैतन्य को सिद्ध करके निकला, उसके मन में एक शुद्ध चैतन्यस्वभाव सिवाय रागादि अन्य भावों को अब स्थान नहीं, उसकी आराधना में अब विक्षेप नहीं पड़ेगा, अब कभी रागादि परभाव की प्रीति होने की नहीं और चैतन्य का प्रेम छूटने का नहीं; राग में उसका उत्साह कभी जाने का नहीं। कोई 'परभाव' आकर उसके चैतन्य के उत्साह का रंग ले जाये, ऐसा होने का नहीं। 'हे प्रभो! आपके कुल की परम्परा का जो रास्ता है, उसी रास्ते से मैं चलकर आया हूँ। जिस रास्ते से आप चले, उसी रास्ते से मैं आ रहा हूँ। मैं आपके कुल का हूँ, और वही मेरे कुल की प्रतिष्ठा की रीति है।' ऐसे ज्ञानस्वभाव के कार्य को करते धर्मी जीव मोक्ष को सिद्ध करता है।

अज्ञानी के सारे परिणाम अज्ञानमय हैं; ज्ञानी के सारे परिणाम ज्ञानमय हैं। अज्ञानी को ज्ञान और राग की भिन्नता का अनुभव नहीं, उसको एकरूप ही वह अनुभव करता है, उससे उसके सारे परिणाम रागादि परभाव के साथ मिले हुये अज्ञानमय हैं; और ज्ञानी को तो ज्ञान और राग के बीच अत्यंत भिन्नता का अनुभव है, वह दोनों को अत्यंत भिन्न अनुभव करता है, ज्ञान परिणाम को रागादि के साथ जरा भी मिलाता नहीं, उससे उसके सारे परिणाम राग के साथ बिना मिलावट के शुद्ध ज्ञानमय हैं, ऐसे ज्ञानमय परिणाम के कारण ज्ञानी को बंधन का अभाव है। ऐसा ज्ञानी का ज्ञान कार्य है, उसका नाम धर्म और मोक्षमार्ग है।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह निजस्वरूप को पहिचानकर ऐसा ज्ञानकार्य करे, वह उसका सत्य कार्य है। इससे विरुद्ध दूसरे भाव को आत्मा का कार्य मानना, वह अज्ञानी का अशुद्ध कार्य है। ऐसा जानकर हे जीव! शुद्ध ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता से ज्ञानमय भावरूप तेरे स्वकार्य को कर।

प्रश्न—ज्ञानी को भी राग तो होता है ?

उत्तर—राग और निर्मल ज्ञानपरिणाम दोनों एकसाथ होने पर ज्ञानी उस समय राग के साथ तन्मयरूप से नहीं पैदा हुआ, लेकिन राग से भिन्न ज्ञान परिणाम में ही तन्मयरूप से पैदा हुआ है, इसलिये ज्ञानी उस समय ज्ञान का ही कर्ता है, राग का कर्ता नहीं। उसके ज्ञान में तन्मयरूप से राग नहीं रहता; राग का ज्ञान हुआ, उस ज्ञान के साथ तन्मयता है। इसप्रकार उसके ज्ञान परिणाम ज्ञानजातिरूप से ही रहते हैं; ज्ञान परिणाम रागरूप नहीं होता। इसलिये ज्ञानी ज्ञानभाव का ही कर्त्ता है। ऐसा स्वरूप समझना, वह अपूर्व भेदज्ञान है। ⁂

आत्मा को साधने की रीत

[कलश टीका-प्रवचन]

संत, आत्मा को साधने की ऐसी मजे की बात सुनाते हैं कि मोह निद्रा का झोंका उड़ जाये और स्वानुभव का उल्लास जगे। स्वानुभव का उल्लास होते परभाव का उल्लास छूट जाये और परिणति अंतर में झुकते अपूर्व स्वानुभव प्रगट हो।

आत्मनश्चिन्तयैवालं मेचकामेचकत्व योः।
दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा॥१९॥

शुद्धता का विकल्प अथवा अशुद्धता का विकल्प, उसके द्वारा कुछ साध्य की सिद्धि नहीं होती। अर्थात् कि स्वानुभव नहीं होता, मोक्षमार्ग नहीं होता। किस क्रिया से मोक्षमार्ग होगा? तो कहते हैं कि 'स्वानुभूत्याचकासते' अर्थात् स्वानुभूति की क्रिया से आत्मा शुद्धरूप से अनुभव में आता है, वह ही मोक्षमार्ग है, वह ही शुद्धात्मारूप साध्य की सिद्धि का उपाय है।

बाहर की क्रियायें तो दूर रहो, अंदर में आत्मा के स्वरूप के सराग-विचार की जो क्रिया, उसके द्वारा भी धर्म नहीं। समस्त विभाव को मिटाने का जिसका स्वभाव है अर्थात् जिसका अभेद अनुभव-स्वसन्मुखतारूप संवेदन होते ही रागादि की उत्पत्ति नहीं होती [भूमिका के अनुसार शुद्धि ही होती है] ऐसे शुद्धात्मा के अनुभव की प्राप्ति उसके विकल्प द्वारा नहीं होती। अरे, ऐसे अनुभव की बात सुनते ही झोंका उड़ जाये; अनादि का मोह निद्रा का झोंका, उसको स्वानुभव द्वारा उड़ाने की यह बात है। स्वानुभव का उल्लास करते आत्मा नींद से जग जाये, और परभाव का उल्लास छूट जाये, परिणति अंतर में झुकते अपूर्व स्वानुभव प्रगट हो।

देखो, यह आत्मा को साधने की रीत! साध्य जो शुद्धात्मा उसको साधने की (सिद्ध करने की) अर्थात् उसका अनुभव करने की रीत यह है कि अंतर्मुख-परिणति द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करना। इससे ही शुद्ध आत्मा की सिद्धि है, दूसरे किसी प्रकार से शुद्ध आत्मा को सिद्ध नहीं किया जा सकता।

श्रुतज्ञान द्वारा मात्र विचार किया करे कि आत्मा इसप्रकार से अनेकरूप है, इसप्रकार से एकरूप है, इसप्रकार से अशुद्ध है, इसप्रकार से शुद्ध है—तो उसमें विशेष विकल्प उठते हैं लेकिन आत्मा के स्वरूप का अनुभव नहीं होता। अतीन्द्रिय आनंद के वेदनसहित जो

सम्यग्दर्शन होता है, वह कुछ ऐसे विकल्परूप विचारों द्वारा नहीं होता। जिज्ञासु दशा में ऐसे विचारों की धारा होती है, लेकिन बाद में उस विकल्प से भी दूर हटकर ज्ञान को अंतर में ले जाये, तब ही निर्विकल्प अनुभूति में भगवान आत्मा अतीन्द्रिय-आनंद सहित प्रगट होती है, इसका नाम सम्यक्त्व और यह आत्मा को सिद्ध करने की रीत।

प्रश्न—श्रुत के विचार और विकल्प वह अनुभव नहीं, तो अनुभव क्या है ? कैसी दशा को तुम अनुभव कहते हो ?

उत्तर—प्रत्यक्षरूप से वस्तु के स्वाद का वेदन हो, उसका नाम अनुभव है। आत्मा के विचार, वह अनुभव नहीं, लेकिन उसके स्वरूप के आनंद का सीधा वेदन, वह अनुभव है-ऐसा वेदन करे, तब ही सम्यग्दर्शन हो।

विचार अर्थात् भेद के विकल्प, वह कुछ वस्तुस्वरूप नहीं, उसमें कुछ वस्तु का स्वाद नहीं, उसमें तो आकुलता का स्वाद है; चैतन्य का स्वाद तो शांत-अतीन्द्रिय-आनंद से भरा हुआ है, उसमें आकुलता नहीं - ऐसा स्वाद अनुभव में सीधा आता है। जैसे गर्मी के दिनों में मुँह से ठंडी आईसक्रीम का टुकड़ा चूसे और ठण्डा मीठा स्वाद में राग का आस्वादन करे, वैसे स्वानुभव में चैतन्य के शीतल जमे हुये पिण्ड का अतीन्द्रिय शांत ज्ञानमय आनंद का स्वाद सरल रीत्या धर्मी को आस्वादन में आता है। आईसक्रीम का स्वाद तो इन्द्रियगम्य है जो रागमय आकुलता का ही स्वाद है और निजात्मा के अनुभव में लोकोत्तर अतीन्द्रिय स्वाद है, वह स्वाद किसी दृष्टांत से बतलाया नहीं जा सकता।

स्वानुभव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों समा जाते हैं और उनके द्वारा ही मोक्ष की सिद्धि होती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तीनों राग में नहीं, लेकिन स्वानुभव में हैं; ऐसे कारणों के सेवन से मोक्षकार्य सिद्ध होता है। सम्यग्दर्शन, वह शुद्धस्वरूप के अवलोकनरूप है, उसमें राग नहीं; सम्यग्ज्ञान, वह शुद्धस्वरूप को साक्षात् जाननेरूप है, उसमें विकल्प नहीं; सम्यक्चारित्र, वह शुद्ध स्वरूप में आचरणरूप है-उसमें भी राग नहीं। ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह भी मोक्ष के कारण हैं और वह तीनों भी स्वानुभव द्वारा ही होते हैं, इसलिये स्वानुभव द्वारा ही मोक्ष की सिद्धि है।

प्रश्न—आपने स्वानुभव को मोक्षमार्ग कहा, तो इतना ही मोक्षमार्ग है ? अथवा दूसरा भी कुछ मोक्षमार्ग है ?

उत्तर—मोक्ष के लिये यह एक ही मार्ग है, और दूसरे किसी प्रकार से मोक्षमार्ग नहीं। मोक्षरूप साध्य की सिद्धि ऐसे मोक्षमार्ग से ही होती है, दूसरी किसी प्रकार से साध्य की सिद्धि नहीं... नहीं। इसलिये शुद्धात्मा को अनुभव करना, वह ही मोक्षार्थी का कर्तव्य है।

भाई, तेरा ध्येय तो लक्ष्य में ले... ध्येय सच्चा होगा तो उस ओर का पुरुषार्थ जागृत होगा। ध्येय ही खोटा होगा तो सच्चा पुरुषार्थ कहाँ से आयेगा? विकल्प और व्यवहार के आश्रय से मोक्षमार्ग है ही नहीं, शुद्धात्मा का आश्रय करना, वह एक ही मोक्षमार्ग है। जो विकल्प को-व्यवहार को-राग को मोक्षमार्ग माने, वह विकल्प के ही अनुभव में अटका रहेगा, लेकिन उससे दूर जाकर शुद्धात्मा को अनुभव नहीं करता, अर्थात् शुद्धात्मा की साध्य सिद्धि उसको नहीं होती। शुद्धात्मा की अनुभूति, वह ही मोक्षमार्ग है, ऐसा ही मार्ग है, इसप्रकार निर्णय करे तो उस ओर सम्यक् पुरुषार्थ जागृत कर साध्य की सिद्धि करे। इसप्रकार ही साध्य की सिद्धि है—दूसरे प्रकार से साध्य की सिद्धि नहीं। इतना ही मोक्षमार्ग है, अर्थात् कि यह ही मोक्षमार्ग है, दूसरा मोक्षमार्ग नहीं, दूसरे प्रकार से मोक्षमार्ग नहीं।

स्वाधीनता की गूँज

रे जीव! तू स्वसहायी है, पराधीन नहीं है। पराधीनता के भाव में अनंत काल से तू मुरझा रहा है, स्वाधीनता को एक बार देख तो सही। एक क्षण तो स्वाधीनता की गूँज जगा! तेरी स्वाधीनता की अचिंत्य महिमा तूने नहीं जानी, इससे निमित्ताधीन बुद्धि से जहाँ-तहाँ तेरा उपयोग घूम रहा है। यह भ्रमण टालने की व निजस्वरूप में स्थिर होने की तरकीब संत तुझे दिखा रहे हैं॥

क्रोधादि से बचने का उपाय-आत्मचिंतन

हे जीव! अज्ञान से क्रोधादि कषायवश तू जन्म-मरण के दुःख अनादि से भोग रहा है... अब यदि तू भवभ्रमण के दुःख से भयभीत हो तो चैतन्य की भावना कर। शुद्धात्मतत्त्व की भावना ही कषायों को रोकने का उपाय है। हे जीव! प्रतिकूलता में आत्मा को याद करना-तेरे सारे समाधान हो जायेंगे; आनंद-समुद्र आत्मा है, उसमें जहाँ उपयोग जोड़ा, वहाँ दुःख कैसा? साधक को जगत् में कुछ प्रतिकूलता है ही नहीं। हे जीव! किसी ने तेरा दोष ग्रहण किया तो उसमें तुझको क्या नुकसान हुआ? तू शांतचित्त रहकर आत्म-आराधना में तत्पर रह।

[परमात्मप्रकाश-प्रवचन]

हे जीव! तेरे से विरुद्ध जाति का यह शरीर है, वह तेरा मित्र नहीं; यदि उसकी मैत्री करने जायेगा तो तू दुःखी होगा। देह के आश्रय दुःख होता है, इसलिये उसको उपचार से 'शत्रु' कहा; और ऐसे दुःखदायी देह का जिसके द्वारा अभाव हो, ऐसे रत्नत्रयधर्म को तू तेरा मित्र जान। अरे, वह देह जड़, उसकी मित्रता क्या? उसका संबंध क्या? मुनिवर तो देह का लक्ष्य छोड़कर चैतन्य की साधना में ऐसे लीन होते हैं कि हिरनियां आकर शरीर को वृक्ष का स्कंध समझकर उससे अपना शरीर घिसती हैं... लेकिन मुनि ध्यान में अडिग रहते हैं। अथवा, मुनि वन-जंगल में अकेले ध्यान में विराजित हों और सिंह आकर शरीर को खा जाता हो, तो भी मुनि सिंह को शत्रु नहीं मानते। जो देह मुनि को नहीं चाहिये, उस देह को यदि सिंह ले जाता है, तो वह तो 'मित्र' हुआ! अरे जीव! ऐसे शरीर से भिन्नता की और वीतरागता की भावना तो भा! परमात्मतत्त्व की भावना ही परम आनंद का कारण है; देह की और शुभाशुभ आस्रव की भावना तो दुःख है।

शल्य - जैसे वचन यदि कोई कहे, तो जबाव नहीं देना और अपने परमात्मतत्त्व में लीन हो जाना। तेरे परमात्मतत्त्व में वचन का प्रवेश नहीं। ऐसे परमात्मतत्त्व की भावना में तुमको परम आनंद होगा और कषायें उपशांत होंगी।

बुरा बोलनेवाला जीव भी कुछ वचन का आधार नहीं और तेरा आत्मा भी वचन का

आधार नहीं। परमब्रह्म ऐसा अपना आत्मा अनंत ज्ञानादिगुणों का धाम है। हे जीव! प्रतिकूलता में 'आत्मा' को याद करना, तेरा सर्व समाधान हो जायेगा। शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना ही कषायों के रोकने का उपाय है।

यह 'आत्मा' तो सिद्ध-भगवंतों को कुटुम्बी है। हे जिनेश्वर! मैं तो आपके कुल का और आपकी जाति का हूँ। इस लक्ष्य से ही मैं धर्म की आराधना करने चला। धर्म का रंग लगा, उसमें अब भंग नहीं पड़ना चाहिये। अब अप्रतिहतभाव से मैं सिद्धदशा में पहुँचूँगा। ऐसे सिद्ध-सिवाय दूसरी जाति हमारी नहीं, तीर्थंकरों का और सिद्धों का जो चैतन्य कुल है, उसी कुल के हम हैं। 'तीर्थंकरों के हम अनुगामी हैं'—यह हमारी टेक है। संसार में कर्मवश जो जातिभेद है, वह जातिभेद हमारा नहीं 'ऐसे विचारों से अपनी शुद्धात्मभावना की पुष्टि करना चाहिये। चैतन्य की भावना में जो लीन हो, वह जीव संसार में न रुले, इसमें क्या आश्चर्य? जिसका चित्त आत्मा में नहीं लगता, वही संसार में भ्रमण करता है, लेकिन जिसका चित्त आत्मा में लगा, उसको परभाव की उत्पत्ति न रही और संसार-भ्रमण न रहा। इसलिये हे जीव! चाहे जैसे प्रतिकूल प्रसंग में तू अपना चित्त आत्मा में जोड़। जब दहकते आभूषणों से पांडवों का देह भडभड़ सुलगता है, तब अंदर शीतल चैतन्य में चित्त को लगाकर केवलज्ञान और मोक्ष पाते हैं; सुकुमारमुनि वगैरह के शरीर को सियार खाता है। उससमय भी अन्दर चैतन्य में चित्त को लगाकर वे अपने परम आनंद का अनुभव करते हैं। अतीन्द्रिय आनंदसरोवर अपनी आत्मा में, लीन होने में दु:ख-प्रतिकूलता कैसी? आराधना में जहाँ विघ्न नहीं, वहाँ कोई प्रतिकूलता है ही नहीं। अनुकूल-प्रतिकूल कोई है ही नहीं। लोकमान्य प्रतिकूलता के समय वह आराधना से डिगता नहीं, लेकिन उलटी उसको आराधना की उग्रता होती है। प्रतिकूलता बाह्य में नहीं है अपनी बहिर्मोह दृष्टि ही प्रतिकूलता है।

चैतन्य पिण्ड आत्मा को इस देह में जन्म धारण करना शरम की बात है। हे जीव! यदि तू भव-भ्रमण से भयभीत हो, तो चैतन्य की भावना कर, उससे लज्जाजनक यह जन्म छूट जायेगा। शुभाशुभ कषाय का होना भी शरम की बात है, उनसे भी भिन्न चैतन्य की भावना कर।

कोई जीव तेरा दोष ग्रहण करे, तो भी तू क्रोधित न हो। अज्ञानी तो बड़े-बड़े धर्मात्माओं के भी दोष निकालते हैं, क्योंकि उनको तो दोष ही पसंद पड़ते हैं 'अरे! उसने मेरा दोष ग्रहण किया, उसमें मुझे क्या नुकसान हुआ? मेरे गुण तो कुछ उसने ले लिये नहीं!' ऐसा विचारकर हे

जीव! तू गुस्सा न कर और अपने चैतन्य की मस्ती में मस्त रह। जगत में दूसरे जीव क्रोधादि से दोष निकालें तो उसमें तुझे क्या? जो करेगा, वह भोगेगा, उससे तू क्यों प्रभावित होता है? जगत के पदार्थों को प्रकाशित करने का तेरा स्वभाव है। कोई शुभभाव करे, कोई अशुभ करे; कोई निन्दा करे, कोई प्रशंसा करे, उससे तुझे कुछ गुण-अवगुण नहीं। इसलिये वस्तुस्वरूप विचार कर तू अपने समाधानभाव में रह। तेरा स्वरूप परम प्रशंसनीय है-उसका ही आदर कर और क्रोधादिभाव निंदनीय हैं, उनको तू छोड़। ऐसी आत्मभावना में तत्पर जीव को निंदादि प्रतिकूलता के प्रसंग में क्रोधादि होते नहीं। जैसे घर में कोई चोर आये और रत्न वगैरह न ले जाकर कचरा ले जाये, तो उसने तो उल्टा घर साफ कर दिया, उसने क्या बिगाड़ा? वैसे ही मेरे तो अनंत गुण हैं, उन्हें तो किसी ने ले नहीं लिये और राग-द्वेषादि दोष ही ग्रहण किये, तो भी मेरा क्या बिगाड़ा? मेरे गुण को तो कोई ले सकता नहीं, लेकिन मेरे में जो क्रोधादि दोष विद्यमान हैं, उन्हें यदि मुझको कोई दूसरा बतलावे तो उसने सत्य ही कहा। उस सत्यवादी के ऊपर क्या द्वेष करना? द्वेष तो अपने दोषों के ऊपर करके उनको दूर करना है। और जो मेरे में अविद्यमान दोष वह कहे तो उसके मिथ्या कहने से तो कुछ मेरे में वे दोष आ नहीं जायेंगे? उसका ज्ञान मिथ्या हुआ। किसी के वृथा कहने से तो दोष लग जाते नहीं। पापी जीव निर्दोष संतों के ऊपर भी कितने ही अत्याचार करता है-लेकिन उससे कुछ संतों के गुण का तो वह नाश कर सकता नहीं। 'कोई पीछे से दोष कहे, सन्मुख कहे, अपमान करे अथवा शरीर को कष्ट पहुँचाये, लेकिन मेरे ज्ञानादि गुणों को बाधा पहुँचाने में कोई समर्थ नहीं। इसलिये मैं किसके ऊपर क्रोध करूँ? मैं यदि क्रोध करता हूँ तो उस क्रोध द्वारा मेरे गुण नष्ट होते हैं, लेकिन मैं अपने क्षमाभाव में रहकर अपने स्वरूप से न डिगूँ तो दूसरा कोई मुझको नुकसान करने में समर्थ नहीं। मेरे जो रत्नत्रय गुण खिले हैं, वे मेरे स्वभाव के आश्रय से खिले हैं, वे कुछ पर के आश्रय से खिले नहीं हैं, जो पर के द्वारा उनका नाश हो! मैं अपने चैतन्यरूप को धारण करता हूँ ऐसे विचारों में जहाँ यह जीव निमग्न हो जाता है, वहाँ क्रोधादि वृत्ति रहती नहीं। जैसे रावण सीता को ले गया, तब बहुत मनाने पर भी सीता महासती उसके सामने भी देखती नहीं थी। कोई रावण को कहता है कि 'तू राम का रूप धारण करे तो सीता, तेरे पर (तुझे राम समझकर) प्रसन्न होगी।' लेकिन रावण जहाँ राम का रूप धारण करता है, वहाँ उसकी वृत्ति भी राम जैसी निर्दोष हो जाती है और विकारी वृत्ति नहीं रहती। सीताजी उसको बहिन जैसी दिखती हैं। वैसे ही यहाँ विकार का नाश करने के

लिये धर्मात्मा कहा है कि 'मैं जहाँ अपने आतमराम का रूप धारण करता हूँ, वहाँ विकारीवृत्ति रहती नहीं।' इसप्रकार शुद्ध आत्मस्वरूप जानकर उसकी भावना में तत्पर रहना अर्थात् स्वसन्मुख परिणमन करना ही क्रोधादि सर्व दोषों के नाश का उपाय है।

आत्मा का स्वानुभव होने पर सम्यग्दृष्टि जीव केवलज्ञानी के जैसी ही निःशंकता से जानता है कि मैं आत्मा का आराधक हुआ हूँ और प्रभु के मार्ग में आया हूँ; स्वानुभव हुआ और भव कट्टी हो गई; अब हमारे इस भवभ्रमण में रुलने का नहीं रहा। ऐसे स्वानुभव के टंकार से आत्मा स्वयं ही अंदर से आवाज देता है।

भजन

काल अचानक ही ले जायेगा, गाफिल होकर रहना क्या रे।।काल०॥
छिन हूँ तोकूं नाहिं बचावै, तौ सुभटन का रखना क्या रे।।काल०१॥
रंच स्वाद करिन के काजै, नरकन में दुःख भरना क्या रे।
कुलजन पथिकनि के हित काजै, जगत जाल में परना क्या रे।।काल०२॥
इन्द्रादिक कोउ नाहि बचैया, और लोक का शरना क्या रे।
निश्चय हुआ जगत में मरना, कष्ट परै तब डरना क्या रे।।काल०३॥
अपना ध्यान धरत खिर जावै, तो कर्मों का हरना क्या रे।
आप हित करि आरत तजि बुधजन, जन्म जन्म में जरना क्या रे।।काल०४॥

श्री मानतुंगाचार्यदेव विरचित

श्री भक्तामर स्तोत्र

[प्रवचनकार - श्री कानजीस्वामी]

(गुजराती लेखक-ब्रह्मचारी हरिलाल जैन, अनुवादक बंशीधर शास्त्री एम०ए)

प्रवचन तिथि ३-९-५६

हे नाथ! भक्ति का अदम्य उत्साह मुझे आपके गुणानुवाद करने में प्रेरित करता है।

आचार्य महाराज को स्वयं भक्ति का आह्लाद आया, वे उसमें अपनी वीतराग रुचि का विस्तार करते हैं, उसमें भगवान निमित्तमात्र हैं। आत्मा का परमार्थ स्वभाव शुद्ध है, यह जिसे रुचता है, उसे भगवान के प्रति भक्ति आये बिना रहती नहीं।

लोग कहते हैं कि—आप भगवान की भक्ति को धर्म नहीं बताकर मात्र पुण्य बतलाते हो; फिर ज्ञानी किसलिए भक्ति करते हैं ?

भाई! वह पुण्य है; किंतु जब तक वीतरागी दशा न हो, तब तक निश्चयरूप अभेदभक्ति की मुख्यतासहित भगवान के प्रति बहुमानरूप आनंद आये बिना रहता नहीं। वह चित्त प्रसन्नतारूप व्यवहारभक्ति है। निश्चय के भान बिना इस जीव ने अनंत बार समवसरण में जाकर कल्पवृक्ष के पुष्पों एवं मणिरत्नों के दीपकों से भगवान की साक्षात् पूजा की किंतु अंतर में अपूर्व जागृति नहीं हुई। आत्मभानसहित जीव को भगवान के प्रति भक्ति का उत्साह आये बिना नहीं रहता, मुझे आत्मा का भान है और आप तो पूर्ण चैतन्य हो गये। इसलिये आपके प्रति भक्तिरूप शुभराग आता है किंतु अनंत गुणों का अनुसरण करने की शक्ति नहीं है फिर भी भक्ति का उत्साह बलपूर्वक स्तुति कराता है, ऐसे समय पुराने पापों का संक्रमण होकर सहज पुण्य हो जाता है, वह पुण्यानुबंधी पुण्य होता है, फिर भी प्रारम्भ से ही श्रद्धा में सर्व प्रकार के राग को सर्वथा हेय समझता है। अत: दृष्टि में उसकी महत्ता या स्वीकारता नहीं है। श्री मानतुंगाचार्य ने कारागार में भक्ति की और एकाग्रतारूप निश्चय भक्ति में उपयोग लगावे तो १४८ कर्म प्रकृति का बंधन टूट जाये। प्रथम श्रद्धा होते ही आत्मज्ञान द्वारा उनका टूटना चालू हो जाता है।

धर्मी जीव के प्रति अपार निरभिमानतापूर्ण भक्ति। श्लोक नं० ६

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम, त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चारुचाम्रकलिका निकरैकहेतु॥६॥

प्रभु! मैं अति अल्प हूँ। अतः 'विद्वानों का हास्य का पात्र हूँ' ऐसा कहकर आचार्य अपनी निरभिमानता बतलाते हैं।

हे नाथ! मैं अल्पज्ञानी हूँ, फिर भी मुझे भेदविज्ञानमय आत्मभान है, अपने पूर्णस्वभाव का अखंड प्रेम रहता है किंतु वीतरागता नहीं है। इसलिये मेरा उत्साह आपकी तरफ प्रवृत्त होता है। जैसे बसन्तऋतु में आम्र के कोमल पत्ती एवं मंजरी होती है, तब उसकी प्रसन्नतावश कोयल 'कुहू-कुहू' करती है, आत्मा की मंजरी देखकर कोयल के कंठ में मिठास आ जाता है और वह मधुर-मधुर ध्वनिमय गुंजारव करती है, उसीप्रकार भगवान! मैं जघन्य ज्ञानी हूँ। कहाँ आपकी उत्कृष्ट पवित्र दुकान और कहाँ मैं पामर, उसमें मुनीम बनकर बैठूँ? जैसे अरबपति सर्राफ की गद्दी पर कुम्हार बैठे, उससे भी नीच हूँ। किंतु आपकी भक्ति के अवसर में जघन्यता को भी भूल जाता हूँ। भक्ति का उत्साह मुझे जबर्दस्त वाचाल बना देता है।

हे प्रभु! आपका परमात्मस्वभाव पूर्ण हुआ है, उसकी परम प्रीति मुझे जबरदस्ती आपकी भक्ति करने को लाचार करती है। देखो!! धर्मात्मा के मानादि नष्ट कर निर्मानी होने एवं अंतर्मुख जागृत होने की भावना होती है। इसलिये इसप्रकार का शुभराग आये बिना रहता नहीं। राग बलपूर्वक आता है। आचार्य छठवीं-सातवीं भूमिका में झूलते हैं। तब वे कहते हैं कि हे नाथ! भक्ति का उत्साह मुझे बलात्कार आपकी स्तुति कराता है। भक्ति का शुभराग लाना नहीं पड़ता किंतु वह आता ही है। ज्ञानी तो स्वसन्मुखता सहित ज्ञातादृष्टारूप से जानता है। हमारे ज्ञान में ऐसी योग्यता आती है।

भक्ति की प्रेरणा ही मुझे वाचाल बनाती है। मैं तो आपका दासानुदास हूँ, पूर्ण चारित्रदशा नहीं हुई, इसलिये इसप्रकार का शुभराग आवे ही। जैसे चैत्रमास में आम्र मंजरी से लड़झड़ रहते हैं, तब कोयल मीठा शब्द बोलती है। उसके बोलने का कारण तो आम की मंजरी एवं बौर ही है, उसीप्रकार मुझे राग आता है, उसमें आपकी भक्ति ही कारण है। विद्वान भले ही अनेक अतिशय अलंकारों से स्तुति करे, मैं तो बालक हूँ।

वीतरागतामय वीतरागता की गूंज जगी है, जैसे बसंत ऋतु में कोयल कूकती है,

उसीप्रकार धर्मात्मा को आत्मभान की भूमिका में सम्यग्ज्ञान की कला विकसित होती है, तब परमात्मा की भक्ति का शुभराग आये बिना नहीं रहता। वाणी, वाणी के कारण ही निकलती है। फिर भी मैं आपको ही आदर्श मानकर वचन द्वारा आपकी भक्ति करता हूँ, यह व्यवहार से कहा जाता है।

हे नाथ! आप जिसप्रकार वीतराग भगवान पूर्ण चैतनस्वभावी प्रगट होकर प्रतिमावत् अकंप निश्चल हो गये, वैसे ही मुझे भी होना है, किंतु ऐसी वीतरागदशा न हो, तब तक आपकी भक्ति का शुभराग आये बिना नहीं रहता।

कोई कह सकता है कि पंचम काल में मोक्ष नहीं है, फिर मोक्ष की बात क्यों करते हो? उसे कहने दो। भाई! जैसे चैत्रमास में आम फलता है, मंजरी आती है, तब कोयल कुहू-कुहू करती है, उसीप्रकार आत्मार्थियों को धर्मलब्धिकाल आत्मधर्म की रुचि के बल से बीच में भक्ति का पुण्य भाव होता ही है, चैतन्य आनंद स्वरूप निश्चय से श्रद्धा में बैठा है, फिर भी धर्मात्मा के भगवान की भक्ति के उत्साह के वश वाचाल हुए बिना नहीं रहता। अतः आपकी स्तुति करता हूँ।

श्लोक-७

त्वत्संस्तवेन भव संतति संनिबद्धं; पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीर भाजाम्।
आक्रान्तलोक मलिनीलमशेषमांशु; सूर्यांशु भिन्नमिव शार्वर मन्धकारम्॥७॥

भवरहित भगवान की भक्ति करनेवाले के अंतरंग में प्रभुत्व भासित होता है, जिन्होंने पूर्ण सर्वज्ञदशा प्रगट की, उनका यथार्थ विश्वास जिसने किया, वह वीतरागदृष्टि एवं शांत परिणामवाला धर्मात्मा होता है। लोग कहते हैं कि केवलज्ञान के अनुसार सबकी पर्याय क्रमबद्ध होती है, तब धर्म का पुरुषार्थ कहाँ रहा? उसका समाधान इसप्रकार है—जिसने सर्वज्ञस्वभावी ध्रुव आत्मा का लक्ष्य सहित केवलज्ञान का स्वीकार किया, उसे निःसंदेह ज्ञायक-स्वभाव की रुचि और आदर होता है। सर्वज्ञ ने केवलज्ञान में जो-जो जैसा देखा, वह उसी समय वैसा ही क्रमबद्ध होता है। ऐसी श्रद्धावाले के भवभ्रमण (संसार) का भाव नहीं रहता। जिसने केवलज्ञान की सत्ता स्वीकार की अथवा क्रमबद्धपर्याय का नियम सम्यक् प्रकार माना, वह स्वसन्मुख ज्ञातादृष्टा हुआ—पर का अकर्ता हुआ। उसकी दृष्टि नित्य निर्मलज्ञानस्वभाव में गई, तब बन्धभाव छूट गया और उसका मोक्षमार्ग खुल गया। इस ज्ञाताभाव में निःसंदेह अनंत

पुरुषार्थ आ गया। कोई क्रमबद्धपर्याय को माने किन्तु उसकी सर्वज्ञता की दृष्टि व अंतर्मुखी प्रवृत्ति न हो, ऐसा बनता नहीं। मैं देह-मन-वाणी या पुण्य-पाप की स्तुति नहीं करता किन्तु हे सर्वज्ञदेव! अनंत गुण संपन्न आप ही के गाने गाता हूँ। आप एक समय में तीन काल और तीन लोक की समस्त पर्यायें जानते हैं, ऐसा जिसका विश्वास है, वह धर्मी है। वह भव रहित भगवान का बहुमान कर विनय से कहता है कि—हे नाथ! आपकी भक्ति में अनंत भवों से बँधे हुए कर्म और विभावदशा के संतान समूल नष्ट होते हैं। कभी पूर्व कर्म के उदय से पाप का संयोग हो किंतु जब सर्वज्ञ वीतराग कथित भेदज्ञान द्वारा पूर्ण ज्ञानस्वभाव का भान हो जाये, तब पाप नष्ट हो जाते हैं, इसे आपकी भक्ति की महिमा बताना दोष नहीं है। जिसे स्वभाव का भान हो, उस जीव के आपकी भक्ति का-वीतरागदेव की भक्ति का ही विकल्प उठता है और उसके ही पाप नष्ट होते हैं।

जैसे सूर्य की किरणों से रात्रि का अंधकार नष्ट हुए बिना रहता नहीं। श्री पद्मनंदी आचार्य ने पद्मनंदी पंचविंशतिका में ऋषभदेव भगवान की स्तुति की है, उससे ज्ञात होता है कि—आचार्य श्री को जहाँ-तहाँ वीतराग प्रभु की महिमा ही दिखती है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि हे नाथ! जब आप मुनिदशा में थे; ध्यानस्थ खड़े थे, तब आपने शुक्लध्यानरूपी प्रचंड ताप से कर्मों के बादल तोड़ डाले जो आकाश में तितर-बितर हो गये हैं। चिदानंद आत्मा का सत्कार होने से कर्म जो निबिड़ थे, वह सब आवरणरूपी बादल नष्ट हो जाते हैं। पूर्व में जो धाराप्रवाहरूप अनादि से अखंड थे-आपके परमार्थपंथरूपी पवन के जोर से टूट गये। आकाश में बादल खंड-खंड यत्र-तत्र उड़ते रहते हैं। इस पर आचार्य श्री उत्प्रेक्षा अलंकार करते हैं कि—हे नाथ! पहले आठ कर्मों का बादल अखंड था किंतु जब आप ध्यानाग्नि में लगे, तब वे बादल टूट गये जो आज भी वे खंड-खंड हुए उड़ते हैं। हे प्रभु! मैं यह मानता हूँ कि कर्मों के टुकड़े ही बादलरूप में बिखरे हुए घूम रहे हैं। आत्मा के भान सहित अंतरंग में एकता होना निश्चय स्तवन है और आपकी भक्ति व्यवहार स्तवन है। ऐसे स्तवन से, भक्ति से कर्म तो नष्ट होते ही हैं। अंतरंग में भेदविज्ञान द्वारा सर्वप्रकार के रागादि को हेय मानकर आत्मा जागृत हुई, तब से स्वाश्रय की अभेद भक्ति तो है ही, उसमें भक्ति के भाव से कर्माधिकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्य से अंधकार नष्ट होता है। यहाँ यह बताया है कि मैं नित्य चिदानंदघन आत्मा हूँ, जहाँ उसका सत्कार किया कि—कर्म क्षणभंगुर-नष्ट हो जाते हैं। मुनि के भक्ति का शुभराग हुआ है

जिसके फल में वे स्वर्ग जावेंगे किंतु इस पक्ष को गौणकर वीतराग दृष्टि के जोर में कहा गया है कि—हमारे कर्म नष्ट होते हैं। अभेद भक्ति-अखंड ज्ञानस्वभाव की पुष्टिरूपी कीर्तन स्तवन हो, उस समय तो भक्ति का विकल्प नहीं होता और राग का कीर्तन भी वस्तुतः आवे नहीं, श्रद्धा में ऐसी दृढ़ता होते हुए भी जब तक वीतराग न हो, तब तक राग आये बिना रहता नहीं। अनंत भव धारण किये किंतु अब तो भव का अभावस्वभाव जो है, वह मेरे अंतरंग में रुचि में जम गया है। इसलिये कर्मों का नाश होगा ही। स्वभाव और विभाव दोनों का भेदज्ञान हो गया है, इसलिये अल्पकाल में बंधन नष्ट हो जावेंगे। आचार्य मानतुंग पंचमकाल के मुनि थे, इसलिये वे देवलोक में जावेंगे। असंख्य वर्ष का पल्योपम और दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम काल होता है, ऐसे सागरोपम की लम्बी आयु स्वर्गलोक में होती है। जिन्हें राग का कण भी आदरणीय न था और देह की क्रिया से अपने को भिन्न मानते थे, भेदविज्ञान द्वारा आज भी वे ज्ञातादृष्टारूप ही हैं, जो स्वर्ग में अमृत के भोजन से तृप्त हैं। स्वर्ग के भव के बाद थोड़े ही समय में शुक्लध्यान द्वारा कर्मों का नाश होगा, ऐसा भाव धर्मात्मा को आये बिना रहता नहीं।

निश्चय-व्यवहार के मेलवाली भक्ति

प्रथम कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का राग आता था, अब (दृष्टि बदल जाने के बाद) उसके स्थान में सुदेवादि का शुभराग न आवे तो उसका कुलटा स्त्री जैसा दुष्टभाव है। 'सत्तास्वरूप' ग्रंथ में सर्वज्ञदेव की सत्ता का निर्णय करा कर गृहीत मिथ्यात्व के त्याग की प्रेरणा दी गई है। वहाँ एक दृष्टांत आया है कि जैसे स्त्री का सच्चा पति लंबे समय से परदेश गया हो, तत्पश्चात् वह किसी अन्य पुरुष को अपना पति मान व भक्तिभाव करती थी, किंतु भाग्ययोग से सच्चा पति घर आ जावे, तब वह स्त्री यदि अन्य पुरुष को छोड़कर सच्चे पति की अधिक सेवा न करे तो कुलटा कहलाती है। इसीप्रकार यह जीव पहले अज्ञान में कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र के लिये, तन-मन-वचन-कषाय, धनादि खर्च कर क्रोध, मान, माया, लोभ के परिणाम करता था, उसे जब सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र, मिल गये हैं, तब उनके प्रति अधिक भक्तिरूप शुभराग न आवे और शक्ति अनुसार धनादि खर्चकर भक्ति-पूजा, प्रभावनादि में प्रीतिपूर्वक रस न ले तो वह कुलटा स्त्री के समान पक्का मिथ्यादृष्टि है। अब मैं आत्मज्ञान और अन्तरंग में लीनता तथा निज परमात्मा की सेवा-भक्ति में ही सावधान हुआ हूँ, और जब विकल्प आता है, तब हे वीतराग! आपको ही अपना सर्वप्रकार हितोपदेशक जानकर आपकी ही भक्ति करता हूँ। मुझे दूसरे का

स्वप्न में भी आदर नहीं है, इसलिये मेरे अल्पकाल में कर्ममल सर्वथा दूर होनेवाला है।

शंका—क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धावाले के अल्पकाल में मोक्ष की बात कहाँ से लाए?

समाधान—भाई! क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करनेवाले को अक्रम जो नित्य द्रव्यस्वभाव-सर्वज्ञस्वभाव का आदर और रुचि मुख्यरूप से हैं। जिसे यह ज्ञाता स्वभाव की दृष्टि है, उसे अल्प काल में मुक्ति होती है। हे नाथ! आप तो तीन काल और तीन लोक के ज्ञाता हैं किंतु किसी के कर्ता नहीं हैं। यह जानते हुए मुझे यह भी निर्णय है कि मैं भी तीन काल-तीन लोक का ज्ञाता हूँ, फिर मैं अल्पा रहूँ—ऐसा नहीं है। भक्ति का राग आता है किंतु वह कर्तव्य नहीं है, यह दृष्टि है। भक्ति का शुभराग आते ही पाप तो दूर रहते हैं, और पूर्ण पवित्र स्वभाव की तल्लीनता में पुण्य-पाप दोनों दूर हो जाते हैं। मैं जब अंतर्मुख हुआ, तब केवलज्ञान व्यक्त होने का स्वकाल अल्पकाल में क्रम में आनेवाला है।

निर्मानता से परमार्थ भक्ति सहित निस्संदेह मुक्ति की श्रद्धा

अंतरंग दृढ़ता की बात बाहर में न करते हुए भी स्तुति में निर्मानता से निस्संदेह श्रद्धा की झंकार की गई है कि हे नाथ! आपके भक्तिपूर्ण स्तोत्र से ही मेरे अनेक भवों के इकट्ठे हुए कर्म नष्ट होते हैं। वह भक्ति कौन सी? निश्चयभक्ति सहित व्यवहार भक्ति की बात है। अज्ञानी व्यवहार के आश्रय से लाभ मानता है, इसलिये उसने भगवान को समझा ही नहीं किंतु राग को ही हितरूप समझा है। ज्ञानी को तो परमार्थ के आश्रयरूप स्वभाव की भक्ति से पुण्य-पाप का नाश होता है और शुभराग से आंशिक पाप का नाश होता है।

श्लोक-८

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु मुक्ताफलद्युति मुपैति ननूद बिन्दु॥८॥

आचार्य की दृष्टि में अंतर परम प्रभुता की एकता और महिमा है। फिर भी वे परम विनय-नम्रता सहित कहते हैं कि हे नाथ! हे स्वामी! यह कह, यह पंचम काल है ऐसा जानते हुए आचार्य-तीर्थंकर भगवान को हृदय में स्थापन करते हैं। वे सिद्धपरमात्मा को अपने सन्मुख ही मानते हैं। चैतन्य के सागर हे परम पवित्रात्मा! मेरी तो मंदबुद्धि है, आपके तो केवलज्ञान है, मेरे पास तो मति-श्रुतज्ञान की तुच्छबुद्धि है किंतु उसे अंतर्मुख लगाई है।

व्यवहार में मैं आपका स्तवन करता हूँ। जैसे कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है 'मैं द्रव्यभाव

स्तुति शुरु करता हूँ, वैसे ही यहाँ कहा है कि मैं आपका स्तवन शुरु करता हूँ। आपकी भक्ति के प्रभाव से प्रसन्न चित्तवालों को यह मेरा स्तोत्र रुचिकर होगा, यदि उनको वीतराग स्वभाव की रुचि होगी। जिसे परमात्मा की भक्ति की अभिलाषा हुई, उसे कैसी रुचि होगी ? अहो ! आचार्य के भक्ति का परम प्रेम उछला है और यह उपमा देते हैं कि जैसे पानी की बूंद कमल के पत्ते पर मोती की तरह लगती है। यह कमल के पत्ते का प्रताप है, उसीप्रकार मेरी भक्ति पानी की बूँद के समान है किंतु आपकी भक्ति मुक्ताफल जैसी कांतिवाली होगी। आपकी भक्ति करने में राग होता है, यह मुक्ताफल की तरह सुशोभित होगी।

हे नाथ ! कमल पत्र पर पानी मोती की तरह सुंदर लगता है, उसीप्रकार मुझ अल्पज्ञ द्वारा की हुई स्तुति आपके प्रताप से सज्जनों-धर्मात्माओं के चित्त में मुक्ताफल की तरह सुशोभित होगी। *क्रमशः*

अंतर्मुख अवलोकते [देखते]

जब युद्ध में से वैराग्य पाकर बाहुबलि ने दीक्षा ली, और उनकी हजारों रानियाँ भी दीक्षा के लिये भगवान के समवशरण में चली गईं... और भरतचक्रवर्ती के महल में दुःख से हाहाकार छा गया, तब उस दुःख की शांति के लिये भरतराज ने क्या किया ?—उस समय भरतराज अपने मन में ऐसे विचार करने लगे, संसार में कोई भी दुःख क्यों न आये, परंतु परमात्मा की भावना सब दुःखों को दूर कर डालती है। यह आत्मभावना करने योग्य है।—ऐसा विचारकर आँख बंद कर ज्यों ही वे आत्म निरीक्षण करने लगे... उनके चित्त में व्याप्त हुआ दुःख, कौन जाने, कहाँ चला गया ? सचमुच, निज-परमात्मा का दर्शन सर्व दुःख दमन का अमोघ उपाय है।

उपजे मोह-विकल्प से समस्त यह संसार,
अंतर्मुख अवलोकतें विलय होत नहि वार।

मोह, विकल्प से पैदा होता है। अंतर्मुख देखने से इस सारे संसार के नष्ट होने में देर नहीं लगती।

विविध वचनामृत

[आत्मधर्म का चालू विभाग : लेखाँक ११ अंक ३ से आगे]

(१६३) तू जिनवर स्वामी मेरा, मैं सेवक हूँ तेरा

जिनवर स्वामी, वह किसका स्वामी है ?

जो उसका सेवक है, उसका वह स्वामी है।

जिनवर देव का सेवक कौन है ?

जो जीव राग का सेवन करता है, वह वीतराग जिनदेव का सेवक नहीं; वीतराग जिनदेव का सेवक तो राग की सेवा छोड़कर वीतरागदेव-जैसे स्वयं के चिदानंद स्वभाव को श्रद्धा में ज्ञान में लेकर सेवन करता है। जिनवरदेव का सच्चा सेवक होने के लिये स्वाश्रय से उसके-जैसा भाव प्रगट करना चाहिये। ऐसे सम्यक्भाव से जीव ने पहिले कभी जिनवरदेव की उपासना नहीं की; जीव को अनादि काल से सम्यक्त्व और जिनवर स्वामी मिले नहीं। एक बार भी ऐसे सम्यक्त्व भाव से जिनवरदेव की जो उपासना करे, उसके भव-भ्रमण का अंत आ जाये, और वह स्वयं जिनवर हो जाये।

(१६४) ज्ञान का रसिया हो... उसका शरण ले

हे भाई, इस भवदु:ख से छूटने के लिये तू ज्ञान का रसिया हो, और राग का रस छोड़, शरण तो ज्ञान में है। ज्ञान से बाहर कोई दूसरा तुझको शरण नहीं। 'राग मुझे तारेगा' ऐसा मानेगा तो तू वीतराग का दास नहीं। वीतराग का दास राग से धर्म मानता नहीं, राग का आदर करता नहीं, राग का शरण लेता नहीं।

(१६५) भगवान के भक्त होने की रीति

तू तेरे ज्ञानस्वभाव का स्वामी हो तो जिनदेव तेरा स्वामी हो। यदि तू राग का स्वामी होगा तो जिनदेव तेरा स्वामी नहीं होगा, अर्थात् तू जिनदेव का सच्चा भक्त नहीं हो सकता। भगवान कहते हैं कि मेरा भक्त राग का स्वामी होता नहीं, मेरा भक्त तो वीतरागस्वभाव को ही आदर करता है। अपने हृदय में अपने भगवान को बैठाना हो तो राग को हृदय में से निकाल दे।

जिसके हृदय में राग बसता है, उसके मलिन हृदय में भगवान बसते नहीं, वह भगवान का सच्चा भक्त नहीं।

(१६६) तेरा सच्चा घर

रे जीव! जो घर वास में ही पाप का स्थान है, उसको तू तेरा निवास नहीं जान... वह तो भव बंधन में बाँधने का यम का फंदा (जाल) है। उसको तेरा घर नहीं जान... तेरा निजघर तो चैतन्यधाम में है, ऐसा तू जान... और उस निजघर में जाकर रह। अनुभूति द्वारा निजघर में प्रवेश कर, वह ही तेरा सच्चा घर है।

(१६७) 'स्वभाव' की प्राप्ति का साधन

भाई, तेरे 'स्वभाव' की प्राप्ति के लिये तुझे तेरे श्रुतज्ञान की पर्याय, यह एक ही साधन पर्याप्त है, दूसरे किसी बाहरी साधन की पराधीनता नहीं। अपनी श्रुतपरिणति को अंतर में झुकाते वक्त तुझे स्वानुभूति में ही तेरे स्वभाव की प्राप्ति होती है। इसप्रकार तेरे स्वभाव की प्राप्ति का साधन तेरे से अभिन्न तेरे में ही है। श्रुतपरिणति को अंतर में झुकाकर द्रव्य के साथ एकता-तन्मयता करते समय क्षण-क्षण समय-समय नवीन-नवीन अपूर्व शांति और अपूर्व आनंद अनुभव में आता है।

(१६८) परिणाम की विचित्रता

रावण ने सीताजी का हरण किया, लक्ष्मण द्वारा रावण का वध हुआ। सीताजी स्वर्ग में २२ सागर की आयु में उत्पन्न हुईं, रावण और लक्षण नीचे की तीसरी पृथ्वी में ७ सागर की आयु में उत्पन्न हुये; वहाँ से निकलकर वे दोनों भाई होंगे और दूसरे १५ सागर तक अनेक भव धारण करेंगे। २२ सागर बाद सीताजी की आत्मा जब चक्रवर्ती होगी, तब रावण और लक्ष्मण ये दोनों जीव उसके पुत्र होंगे। कहाँ रावण और कहाँ सीता—वे ही पिता-पुत्र होंगे; कहाँ लक्ष्मण और कहाँ रावण—एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी, और कहाँ दोनों एक-दूसरे के भाई। पश्चात् तीर्थंकर के पादमूल में अपने पूर्व भवों को देखकर, परिवार सहित दोनों पुत्र तथा सीता के जीव चक्री जिनदीक्षा ग्रहण करके वे तीनों पंच अनुत्तर विमान में अहमिंद्र होंगे। वहाँ से आकर फिर रावण की आत्मा तो तीर्थंकर होगी और सीता का जीव उनके गणधर होंगे। लक्ष्मण का जीव भी धातुकी खंड द्वीप के विदेहक्षेत्र में तीर्थंकर होगा। **देखो, जीवों के परिणाम की विचित्रता**

(१६९) आत्मा का अस्तित्व

प्रश्न—आत्मा है तो वह आँख से दिखता क्यों नहीं ?

उत्तर—भाई, आँख से दिखे उसका ही अस्तित्व मानना, यह सिद्धांत बराबर नहीं। आत्मा वगैरह कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं कि जिनका अस्तित्व आँख से नहीं दिखता, लेकिन आत्मा ज्ञान से जानी जाती है। आत्मा का अतीन्द्रिय स्वसन्मुख ज्ञान से ही अनुभव किया जा सकता है। पदार्थों का जो ज्ञान होता है, उस पर से आत्मा का अस्तित्व निश्चित होता है; 'आत्मा' न हो तो 'ज्ञान' कहाँ से हो ?

कोई शंका करे कि 'आत्मा नहीं' तो कहते हैं कि 'हे भाई! आत्मा नहीं, ऐसी शंका आत्मा वगैर किसके की ? वह टीकाकार कौन है ? वह शंका करनेवाला जो तत्त्व है, वही आत्मा है, शंका जड़ तत्त्वों में नहीं होती। आत्मा देह से भिन्न तत्त्व है, अर्थात् जन्म-मरण जितना ही वह नहीं।

(१७०) धर्मी का अनुभव

आत्मा निज स्वरूप में प्रवेश कर एकाग्र हुआ, वहाँ राग जुदा रह गया, इसका नाम भेदज्ञान। राग से भिन्न शुद्धात्मा का ऐसा अनुभव एक बार जहाँ हुआ, फिर धर्मी को कभी राग में एकत्वबुद्धि होती नहीं। राग-समय राग से भिन्न शुद्धात्मा को ही वह स्वरूप में अनुभवता है; राग को निज स्वभावरूप एक क्षण भी नहीं अनुभवता। धर्मी को ऐसा अनुभव मोक्ष का मार्ग है।

(१७१) चैतन्य नगर को बसाओ

हे जीव! अपने आत्मा के असंख्य प्रदेशरूपी चैतन्यनगर को रत्नत्रयरूपी प्रजा द्वारा बसाओ। अनादि से तेरा चैतन्य क्षेत्र, निर्मल परिणति वगैर का, ऊजड़ बन रहा है, उसमें राग-द्वेष-मोह-विषय-कषाय उगे हैं; अब स्वसंवेदन द्वारा उन रागादि परभावों को उखेड़कर उसे ऊजड़ बनाओ, और स्वानुभवरूपी जल-सिंचन द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मल भावों को अपने आत्मा में बसाओ। अनादि से जो परभाव बसे हैं, उनको तो उखाड़कर ऊजड़ कर डाल, और अनादि से रत्नत्रय रहित ऊजड़ अपनी चैतन्यनगरी में अब रत्नत्रय की प्रजा को बसाओ। जैसे ऊजड़ नगरी शोभती नहीं, वैसे रत्नत्रय वगैर का ऊजड़ आत्मा शोभता नहीं। इसलिये स्वानुभूति द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-आनंद आदि आबादी अपने आत्मा को भर दे।

सच्ची कमाई

दया–दान–पूजा–शील पूँजी से अजानपने,
जितनो हंस तू अनादिकाल में कमायेगो;
तेरे बिन विवेक की कमाई न रहे हाथ,
भेदज्ञान बिना एक समय में गमायेगो॥
अमल अखंडित स्वरूप शुद्ध चिदानंद,
थाके वणजमांही एक समय जो रमायेगा;
मेरी समझ मान जीव अपने प्रताप आप,
एक समय की कमाई तू अनंत काल खायेगो॥

हे जीव! है चैतन्य हंस! अज्ञानभाव से अनादि काल से तू दया–दान–पूजा–शील वगैरह की जो पूंजी कमायेगा तो विवेक वगैर की पूंजी तेरे हाथ में नहीं रहेगी, भेदज्ञान वगैर एक क्षण में वह सारी कमाई तू गुमा देगा।

और, यदि तू तेरे अमल–अखंड शुद्ध चिदानंदस्वरूप के व्यापार में अपना उपयोग एक समय भी लगायेगा तो उसके प्रताप से एक समय में इतनी कमाई होगी कि अनंत काल तक खायेगा, तब भी वह कम नहीं होगी; इसलिये तू मेरी शिक्षा मान और चिदानंदस्वरूप में अपने उपयोग को लगा। —*'रत्नसंग्रह'*

दस लक्षण धर्म

"दंसण मूलो धम्मो"

सम्यक्त्व-दर्शन-ज्ञान-चारित्र सदा चाहूं भावसों,
दसलक्षणी मैं धर्म चाहूं महा हर्ष उछावसों।
मैं साधुजन का संग चाहूं प्रीति मन वच काय जी,
आराधना उत्तम सदा, चाहूं सुनो जिनराय जी॥

सोलह कारण भावना

षोड़श कारण गुण करे, हरे चतुर्गति वास।
पाप पुण्य सब नाशके, ज्ञान भान परकाश॥

(१) दरश विशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई;
(२) विनय महा धारे जो प्राणी, शिव वनिता की सखी बखानी।
(३) शील सदा दिढ जो नर पाले, सो अपनी सब आपद टाले;
(४) ज्ञानाभ्यास करे मनमांही, ताके मोह महातम नाहीं।
(५) जो संवेग भाव विस्तारे, स्वर्ग-मुक्ति पद आप निहारे;
(६) दान देय मन हरस विशेषे, इह भव जस, परभव सुख देखे।
(७) जो तप तपे खपे अभिलाषा, चूरे करम शिखर गुरु भाषा;
(८) साधु समाधि सदा मन लावे, तिहुं जग भोग भोगि शिव पावे।
(९) निशदिन वैयावृत्त्य करैया, सो निश्चय भव नीर तिरैया;
(१०) जो अरहंत भक्ति मन आने, सो जन विषय कषाय न जाने।
(११) जो आचारज भक्ति करे है, सो निर्मल आचार धरे है;
(१२) बहु श्रुतवंत भक्ति जे करहिं, सो नर सम्पूरन श्रुत धरिहिं।
(१३) प्रवचन भक्ति करे जो ज्ञाता, लहे ज्ञान परमानंद दाता;
(१४) षट् आवश्य काल जो साधे, सो ही रत्नत्रय आराधे।
(१५) धर्म प्रभाव करे जो ज्ञानी, तिन शिव मारग रीति पिछानी;
(१६) वत्सल अंग सदा जो ध्यावे, सो तीर्थंकर पदवी पावे।

त्रिकालवर्ती तीर्थंकर भगवंतों को नमस्कार हो!

रत्नत्रय की आराधना का पर्व

पर्यूषण पर्व अर्थात् रत्नत्रय की आराधना का पर्व। अहा, रत्नत्रय की आराधना... जिसका नाम सुनते प्रत्येक जैन का हृदय भक्ति से उल्लसित हो जाता है। उत्तम क्षमादि दशधर्मों की उपासना भी रत्नत्रय की आराधना में समा जाती है। ऐसे रत्नत्रय की पूर्ण आराधना अपना उत्तम ध्येय है। उस ध्येय को जो साध रहे हैं, ऐसे रत्नत्रयधारी महात्माओं की महिमा की क्या बात! उस रत्नत्रयधर्म का यथार्थ स्वरूप पहिचानकर, और उन रत्नत्रयधारी संतों को पहिचानकर उनकी भावनापूर्वक उनके प्रति परम भक्ति-बहुमान-पूजनादिरूप में प्रवर्तना वह भी रत्नत्रय की उपासना का एक प्रकार (भेद) है, उसमें रत्नत्रयधर्म को आराधना करने की स्वयं की भावना पोषित होती है। रत्नत्रय की जयमाला द्वारा भी वही भावना भाने में आती है।

चहुंगति-फणि विषहरन-मणि, दुःख पावक जलधार।
शिव सुख सुधा-सरोवरी, सम्यक् त्रयी निहार॥

[चार गतिरूप जो फणिधर, उसके विष को हरन करनेवाला मणि समान, दुःखरूप अग्नि को बुझाने में जलधारा समान और मोक्षसुखरूपी अमृत का सरोवर ऐसे इस सम्यक् रत्नत्रय को पहिचान करके हे जीव! उसकी तू आराधना कर।]

जापे ध्यान सुथिर बन आवे, ताके करम बंध कट जावे।
तासों शिवतिय प्रीति बढ़ावे, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावे॥
ताको चहुंगति के दुःख नांही, सो न परे भवसागर माँही।
जन्म-जरा मृतु दोष मिटावे, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावे॥
सोई दशलक्षण को साधे, सो सोलह कारण आराधे।
सो परमातप पद उपजावे, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावे॥
सोई शक्र-चक्रिपद लेई, तीन लोक के सुख विलसेई।
सो रागादिक भाव बहावे, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावे॥
सोई लोकालोक निहारे, परमानंद दशा विस्तारे।
आप तिरे औरन तिरवावे, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावे॥

स्थि...ति...क...र...ण

''अहो, ऐसा पवित्र जैनधर्म ! ऐसा अपूर्व मार्ग ! पहिले कभी नहीं आराधन किया ऐसा मोक्षमार्ग ! उसको साधकर अब मोक्ष में जाने का समय आया है.... तो आत्मार्थी को उसमें प्रमाद अथवा अनुत्साह क्यों हो ? घोरातिघोर उपद्रव में भी स्थित रहे अनेक संत मोक्षमार्ग से डिगे नहीं, अडिग आत्मा के अवलंबन से मोक्षमार्ग में स्थित रहे हैं... और मुझे भी उनका ही अनुकरण करके आत्मा को मोक्षमार्ग में ले जाना है... संसार के घोरातिघोर दु:खों से अब इस आत्मा को बस (पर्याप्त) हो....'' इस तरह मोक्षमार्ग में संवेग और संसार से निर्वेद आदि अनेक प्रकार से आत्मा को उत्साहित कर मोक्षमार्ग की महिमा प्रसिद्ध करके सम्यक्त्वी अपनी तथा दूसरों की आत्मा को मोक्षमार्ग में दृढ़रूप से स्थिर करता है, उसका नाम स्थितिकरण है।

धर्मात्मा स्वयं अपनी आत्मा को मोक्षमार्ग से च्युत नहीं होने देता, उसीप्रकार दूसरे साधर्मी को कदाचित् मोक्षमार्ग के प्रति निरुत्साही होकर डिगता देखे, तो उसको भी इस उपदेशादि द्वारा तथा वात्सल्य द्वारा मोक्षमार्ग के प्रति उल्लासित करके दृढ़ रूप से मार्ग में स्थिर करता है, सर्वप्रकार उसके प्रति वात्सल्य बतलाकर उसको मार्ग के प्रति उत्साहित करता है– ऐसा स्थितिकरण का भाव धर्मी को सहज ही होता है।

'स्थितिकरण' गुणधारक संतों को नमस्कार हो।

मोह जल्दी टूटे–ऐसा उपदेश

'अपनी शुद्धात्मा को जानकर मोह कैसे टूटे', ऐसी जिसकी जिज्ञासा है और दूसरी अप्रयोजनभूत बातों में जिसका ..... शिष्य को शुद्धतत्त्व का उपदेश देते हैं।

दस लक्षण धर्म

१– उत्तम क्षमा जहाँ मन होई, अंतर बाहर शत्रु न कोई;

२– उत्तम मार्दव विनय प्रकाशे, नाना भेद ज्ञान सब भासे।

३– उत्तम आर्जव कपट मिटावे, दुर्गति त्याग सुगति उपजावे;

४– उत्तम शौच लोभ परिहारी, संतोषी गुन रत्न भंडारी।

५– उत्तम सत्य वचन मुख बोले, सो प्राणी संसार न डोले;

६– उत्तम संयम पाले ज्ञाता, नरभव सफल करे ले साता।

७– उत्तम तप निरवांछित पाले, सो नर करम शत्रु को टाले;

८– उत्तम त्याग करे जो कोई, ता जीव को सुर–शिव सुख होई।

९– उत्तम आकिंचन्य व्रत धारे, परम समाधिदशा विस्तारे;

१०– उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावे, नर–सुर सहित मुक्ति फल पावे।

करे करम की निर्जरा, भव पींजरा विनाश;

अजर अमर पद को लहे, 'द्यानत' सुख की राश।

आराधना की भावना

धन्य है उन संतों को... कि जिसका जीवन रत्नत्रय की आराधना में सदा तत्पर है। ऐसे संतों को नमस्कार करके उत्तम क्षमादि दश धर्मों की आराधना की भावना भाते हैं।

(१) निंदा उपसर्ग वगैरह क्रोध के बाह्य प्रसंग उपस्थित हों तो भी, आत्मस्वरूप की दृढ़ भावना के बल द्वारा क्रोध की उत्पत्ति होने न दूँ और वीतरागी क्षमा भाव द्वारा रत्नत्रय की आराधना में निश्चल रहूँ—इसप्रकार क्षमाधर्म की आराधना करूँ।

(२) भेदज्ञान द्वारा जगत से भिन्न आत्मतत्त्व को जानकर उसकी आराधना में तत्पर रहूँ और देहादि पर का गर्व होने न दूँ। पंच परमेष्ठी-पास मेरी अत्यंत दीनता जानकर निरभिमान रहूँ और धर्मात्मा गुणीजनों के प्रति परम विनय से बर्ताव करूँ, इसप्रकार उत्तम मार्दव की आराधना करूँ।

(३) निर्दोष स्वरूप की भावना में रहता हुआ, अत्यंत सरलपने निज दोषों का अवलोकन करूँ और संत गुरु के शरण में उनको नष्ट करने का उद्यम करूँ-इसप्रकार उत्तम आर्जव धर्म की आराधना करूँ।

(४) भेदज्ञान द्वारा जगत को और देह को भिन्न जानकर सर्वत्र निर्लोभ बनूँ, शुद्ध स्वरूप की आराधना द्वारा पवित्र परिणाम प्रगट करके, उत्तम शौच धर्म की आराधना करूँ।

(५) तत्त्व से विरुद्ध ऐसे असत्य को छोड़कर, सम्यग्ज्ञान द्वारा सत्य वस्तु स्वभाव की आराधना करूँ और वाणी से भी सम्यग्ज्ञान के कारणभूत ऐसे वीतरागी सत्य का ही प्रतिपादन करूँ। इसप्रकार उत्तम सत्य धर्म की आराधना करूँ।

(६) निज स्वरूप में उपयोग को ऐसा लीन करूँ कि चाहे-जैसे प्रसंग में भी संयम से न डिगूं और विषय-कषायरूप असंयम प्रवृत्ति न हो। ऐसे उत्तम संयमधर्म की आराधना करूँ।

(७) बाहुबलि मुनिराज, पांडव मुनिराज वगैरह के जैसे चैतन्य ध्यान का प्रतपन करके उत्तम तपधर्म की आराधना करूँ, उपसर्गों से भी डिगूँ नहीं।

(८) भेदज्ञान के बल से, सर्वत्र ममत्व के त्याग द्वारा चैतन्य में लीन होऊं? मुनिवरों को भक्ति से दान दूँ, साधर्मियों को आदरपूर्वक शास्त्र दानादि दूँ, इसप्रकार उत्तम त्याग धर्म की आराधना करूँ।

(९) अपने शुद्ध आत्मा सिवाय अन्य किंचित्मात्र भी मेरा नहीं–ऐसी अकिंचन भावना में परिणति करके उत्तम आकिंचन्य धर्म की आराधना करूँ।

(१०) ब्रह्मस्वरूप मेरा आत्मा, उसमें लीन होकर, और जगत के समस्त विषयों से उदासीन होकर भगवान महावीर, सेठ सुदर्शन वगैरह महापुरुषों के जैसे उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म की आराधना करूँ।

इसप्रकार रत्नत्रयसंयुक्त ऐसे इन उत्तम दशधर्मों की परिपूर्ण उपासना में आत्मा को लगाना और उसके आराधक संतों के प्रति परम विनय–बहुमान से बर्ताव करना, वह ही सच्ची 'पर्यूषण' है। हे जीव! तू सर्व उद्यम से अपनी आत्मा को ऐसी आराधना में जोड़ और संसार से मुख मोड़।

ज्ञानी शूरवीर होता है

परमात्मतत्त्व की भावना में जगत की प्रतिकूलता कैसी? जैसे सिंह के सामने खरगोश आता है तो वह मरने के लिये ही आता है। वैसे ज्ञानी–साधक के सामने प्रतिकूल कर्म उदय में आये तो वह नष्ट होने के लिये ही है। कषाय के प्रसंग में अंदर परमात्मतत्त्व का चिंतन करने से कषायें शांत हो जाती हैं। इसलिये हे जीव! तू दूसरी चिंता छोड़कर, सिंह जैसा होकर शीघ्र ही परमात्मतत्त्व की भावना में अपने चित्त को लगा।

[परमात्म प्रकाश–प्रवचन]

साधक को कदाचित् पूर्व पाप के उदय से अनेक प्रकार की प्रतिकूलता के दुःख आ जायें तो भी उसमें वह स्वयं धीरज स्वभाव को छोड़ता नहीं, ज्ञानस्वभाव की आराधना से डिगता नहीं। देखो न, राजकुमार–पांडवों वगैरह को कैसे प्रसंग आये, लेकिन वे स्वसन्मुखता से डिगे नहीं। कर्म उदय के सन्मुख हो, तब उदय में आया हुआ कर्म चला जायेगा। पुरुषार्थ द्वारा जिस कर्म को उदीरणा करके नष्ट करना चाहता था, वह कर्म जब सामने स्वयं उदय में आया, तब साधक जीव शान्तचित्तपूर्वक कर्म का क्षय करता है। जैसे कोई शूरवीर पुरुष दुश्मन

को, नष्ट करने के लिये खोजता हो, तब यदि दुश्मन साक्षात् ही उसके पास आये तो वह खुशी होता है, वैसे ही साधक धर्मात्मा कर्मों को नष्ट करना चाहता है। वहाँ यदि कर्म सामने उदय में आकर नष्ट होने लगे तो उसे खुशी होती है अर्थात् कर्म के उदय में ज्ञानी घबड़ाता नहीं, लेकिन धीर बने रहकर वीतरागभाव द्वारा कर्मों का नाश करता है।

अरे जीव! तू अपने स्वभाव की तरफ के प्रयत्न में रह, वहाँ तुझे कोई कर्म बाधक नहीं होगा, उदय में आया हुआ कर्म भी चला जायेगा। काललब्धि या कर्म का नाम लेकर अपने पुरुषार्थ को रोकते नहीं। मुनि ज्ञान-ध्यान की उग्रता द्वारा सत्ता में रहे हुये कर्मों को भी उदयावलि में खींचकर नष्ट कर डालते हैं। अरे जीव! तेरा बांधा हुआ कर्म तेरे पुरुषार्थ से क्या नहीं टूटेगा? अवश्य टूटेगा। विरुद्ध भाव से जो कर्म बंधा था, वह सम्यक् भाव से एक क्षण में टूट जाता है। लेकिन तू अपने स्वभाव की रुचि करके प्रयत्न को स्व सन्मुख झुका। अरे जीव! तू सर्वज्ञस्वभावी आत्मा! अचिंत्य तेरा सामर्थ्य, और कर्म के उदय की जरा सी प्रतिकूलता में घिर जाये... यह कैसी बात? बड़ा सिंह खरगोश से दब जाये, यह कैसे बने? सिंह की दहाड़ सुनकर खरगोश तो कहीं भी भागे... अरे, दूर से गंध आये, तो भी खरगोश भयभीतर होकर भागने लगे; वैसे ही हे जीव, तू चैतन्यस्वभाव की दहाड़ लगाते हुए यदि जग जाये, तो खरगोश जैसे कर्म तो कहीं भी भागेंगे, और वे चैतन्य की रुचि के संस्कार जहाँ हुये, वहाँ उस संस्कार की गंध से ही मिथ्यात्वादि कर्म ढीले होकर भाग जायेंगे। तू तो सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है, सर्वज्ञ तेरी जाति है, सर्वज्ञ भगवान के पूरे उत्तराधिकार को सम्हाल ले, ऐसी तेरी ताकत है, तब ऐसे स्वभाव को साधने में जो जगा, वह कोई परिषह अथवा उपसर्ग से नहीं डिगता, प्रतिकूलता के ढेर उसको हटा नहीं सकते, उसकी आराधना कोई तोड़ नहीं सकता। पहिले बांधे हुये अशुभ कर्म ऐसे जीव के उदय में आयें तो वे नष्ट होने के लिये ही आये हैं। सिंह के सामने खरगोश आये तो समझना चाहिये, वह मरने के लिये ही आया है; वैसे ही आराधक जीव के पूर्वकर्म उदय में आया तो समझो कि वह मरने के लिये आया है; धर्मी तो अपने निर्विकल्प आत्मतत्त्व की भावना में ही रहता है। आत्मतत्त्व की भावना का बड़ा बल है, उसकी अज्ञानी को खबर नहीं। यहाँ शिक्षा देते हुए कहते हैं कि हे जीव! कोई तुझे कठोर-कर्कश-उग्र निन्दा के शब्द कहे, तेरे ऊपर दोष डाले, और तेरे से सहन न होता हो तो कषाय दूर करने के लिये तू शीघ्र अपने परमानंदस्वरूप की भावना कर, उसका चिंतन कर। उस सर्वोत्कृष्ट चैतन्य का चिंतन

करते समय ही कषायें ढीली पड़ जायेंगी। जगत तेरी निंदा भी करे, उससे तू अपने परमात्मतत्त्व की भावना को नहीं छोड़ेगा। जैसे, सीताजी ने राम को संदेश कहलाया कि लोक निंदा के भय से मुझे तो छोड़ा, लेकिन लोकनिंदा के भय से जिनधर्म को नहीं छोड़ बैठना। वैसे ही हे मुमुक्षु! यदि लोक तेरी निंदा भी करे तो उससे तू अपनी शांति नहीं छोड़ना, परमात्मतत्त्व की भावना से डिगकर कषाय नहीं होने देना। तेरे परमात्मतत्त्व में कोई निंदा का प्रवेश नहीं, अतः उस परमतत्त्व की तू उग्र भावना करना।

कषायों को जीतने का उपाय क्या? एक ही कि अंदर में परमात्मतत्त्व की भावना भाना। प्रतिकूलता में समाधान का उपाय क्या? कि परमात्मतत्त्व की भावना करना। परमात्मतत्त्व की भावना में रहते हुए जीव को जगत में कोई प्रतिकूलता का दुःख नहीं होता, उस भावना में अकषायी शांति का वेदन है। ऐसी भावना मुमुक्षु का कर्तव्य है।

जैसे दरिद्रता के समय किसी आदमी ने पच्चीस हजार का ऋण किया, बाद में करोड़ों-अरबों का स्वामी हुआ और अपना ऋण चुकाने के लिये ऋण देनेवाले को खोजता हो, तब वहाँ वह आदमी सहज घर आ जाये, तो वह हर्षपूर्वक उसका ऋण चुकाकर ऋणमुक्त होता है, वैसे ही पहिले अज्ञानदशा में कोई कर्म बँध गया। अब धर्मी मुमुक्षु चैतन्य सम्पत्ति का स्वामी हुआ और कर्मबंधन से छूटना चाहता है, तब वहाँ वह कर्म अपने आप उदय में आकर खिरने लगा तो धर्मी अपने स्वभाव में रहकर उन कर्मों को जर्जरित कर डालता है और कर्म मुक्त होता है। प्रतिकूलता के प्रसंग में धर्मी डरता तो नहीं, लेकिन प्रयत्न की उग्रता द्वारा विशेष निर्जरा करता है और कहता है अरे, मेरे स्वभाव में प्रतिकूलता कैसी? अज्ञानी तो प्रतिकूलता देखकर स्वभाव को भूल जाता है और रुआंसा होकर बैठता है, लेकिन धर्मी तो सामने चुनौती देकर स्वभाव की शूरवीरता द्वारा कर्मों को नष्ट कर डालता है। ज्ञानी शूरवीर होता है, वह सर्वज्ञस्वभाव के धैर्य को छोड़ता नहीं।

अब, प्रतिकूलता बहुत आये तो क्या करना? उसकी तरफ से लक्ष फेरकर सर्वज्ञ-स्वभाव की तरफ लक्ष कर। स्वभाव की गुफा में प्रवेश कर... उसमें परम शांति है। प्रतिकूलता के सामने देखकर बैठा रहेगा तो खेद होगा, लेकिन बेहद ज्ञानस्वभावी के सामने लक्ष करेगा तो प्रतिकूलता में भी धैर्य और शांति ही रहेगी। इसलिये हे मुमुक्षु! तू सदैव अपने परमतत्त्व की भावना में तत्पर रह।

हँसमुख की फरियाद

[स्व० श्री हीराचंदभाई मास्टर जी ने अपने विद्यार्थियों के लिये तारीख २१-१२-१९४७ के दिन लिखा हुआ आनंदकारी प्रसंग]

हँसमुख—श्रीमानजी! मैं आज जब पाठशाला आ रहा था, तब भूपत ने मुझे गाली दी।

गुरुजी—लीजिये, तब आज अपने को उस संबंधी विचारना है! बोलो; ये भूपत कौन सा द्रव्य?

हँसमुख—ये तो जीवद्रव्य।

गुरुजी—तब गाली किसमें से बनी? बसंत बोलो।

बसंत—यह तो पुद्गलद्रव्य में से।

गुरुजी—पूरा कहो? कौन कहेगा?

धरणीधर—श्रीमानजी! यह तो पुद्गलद्रव्य में से बने हुये स्कंधों की भाषावर्गणा की पर्याय।

गुरुजी—बराबर। तब क्या भूपत बोल सकता है?

कुलीन—नहीं श्रीमान! भूपत तो जीवद्रव्य है और गाली का शब्द तो पुद्गलद्रव्य में से बना है। दोनों द्रव्य अलग है।

हँसमुख—परंतु उसने मुझे गाली देने का भाव तो किया न?

गुरुजी—तुम शांत तो रहो, यह बात भी आती है। बोलो, भूपत ने गाली देने का भाव किया, इसलिये गाली निकली? कौन जवाब देगा?

रजनी—नहीं श्रीमान! ऐसा कैसे बने? जीव और पुद्गल दोनों स्वतन्त्र और अलग-अलग हैं?

गुरुजी—तब पुद्गल के परमाणुओं को गालीरूप परिणमाने के लिये भूपत को ऐसा भाव करना पड़ा, ऐसा कहें तो?

मनसुख—यह भी दोषपूर्ण है।

गुरुजी—उसका कारण नियम सहित दो?

मनसुख—प्रत्येक द्रव्य में एक ऐसा अगुरुलघु नाम का सामान्य गुण है कि द्रव्य की द्रव्यता कायम रहे अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप कभी परिणमन नहीं करे; इसलिये!

हँसमुख—तब भूपत ने गाली देने का भाव किया उसको तो कुछ भी नहीं ?

ज्योतिन्द्र—(बीच में बोल उठा) नहीं क्यों ? इसका, इसको तो ऐसा करना चाहिये कि फिर गाली देना ही भूल जाये !

गुरुजी—तुम तो भाई, भारी उतावले हो ! यह बात मैं कहीं भूल नहीं गया हूँ। शांत होकर सुनो तो सही ! बोलो, गाली देने का भूपत का भाव कौन सा कहें ?

किशोर—यह तो खराब भाव कहा जाता है। इससे तो पाप बँधता है।

हँसमुख—पाप बँधा, वह तो पुद्गल आया ! उसमें भूपत के आत्मा को क्या सजा हुई ?

किशोर—सजा क्यों न हुई ? तब पुण्य के भाव करने से घातिकर्म पाप बँधता है आत्मा की पर्याय हीन बनती है तो फिर यह तो पाप का भाव हुआ ! इससे तो अधिक नुकसान हुआ ! पाप भाव से तो मूढ़ता बढ़ी और संसार बढ़ा !

गुरुजी—शाबाश किशोर ! तुमने ठीक स्पष्ट किया। तब उसने गाली दी, उसके बदले गाली देने का विचार है ? बोल हँसमुख, क्या विचार है ?

हँसमुख—नहीं श्रीमान, ऐसा करने पर तो इस खराब भाव का फल पीछे मुझे ही भोगना पड़ेगा।

गुरुजी—तब पुद्गल से बने हुये शब्दों को ठपका देना तो ठीक है न ?

सब हँस पड़ते हैं और एक साथ सब बोल उठे कि श्रीमान् यह तो जड़ है, इसे कहाँ खबर है कि हम कौन हैं।

गुरुजी—पश्चात् अब करना क्या ?

हँसमुख—अब कुछ करने का बाकी रहा नहीं। जानना और देखना। प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने कारण टिका रहकर बदलता है ! ऐसा इस जगत का नाटक है। उसको देखते अपने को देखते रहना, जिससे दुःख और अशांति होवे ही नहीं और आनंद होते रहें।

सभी बहुत खुशी हुये और आज तो हँसमुख ने शिकायत करके ठीक न्याय निकाला, ऐसा कहकर सब बिखर गये।

इसी समय एक गृहस्थ पाठशाला की मुलाकात के लिये आया था। बोला, वाह रे वाह ! यह तो भाई कालेज का कालेज, परंतु मनुष्य बनने की महाशाला ! ऐसी शालायें तो ग्राम-ग्राम में होना चाहिये।

'शीघ्र मोह नष्ट हो' ऐसा उपदेश

'अपने शुद्धात्मा को जानकर मोह कैसे मिटे...' ऐसी जिसकी जिज्ञासा है और दूसरे अप्रयोजनभूत विषयों में जिसका लक्ष्य नहीं है, ऐसे शिष्य को शुद्धतत्त्व का उपदेश देते हैं।

[परमात्मप्रकाश-प्रवचन]

हे प्रभाकर भट्ट! अर्थात् हे मुमुक्षु! 'जैसा अनंत चतुष्टयस्वरूप परमात्मा है, वैसा ही मैं हूँ,' ऐसा निश्चय करके तू सब विकल्पों को छोड़कर केवल परमात्मा का ही ध्यान कर। 'नि:संदेह स्वदेह में ही शुद्धात्मा रहती है।' इसका निश्चय करके उसका ध्यान।—इससे शीघ्र तेरा मोह टूटेगा और परम आनंद का तुझमें ही अनुभव होगा।

तेरी केवलज्ञानादि पर्यायों का संबंध तेरे गुणों के ही साथ है, पर के साथ तेरी पर्याय का संबंध नहीं। यदि तेरी पर्याय का संबंध 'पर' के साथ हो, तो गुण-गुणी की एकता टूट जायेगी लेकिन गुण-गुणी की एकता कभी टूटती नहीं। जैसे आत्मा के गुण 'पर' के आश्रय कभी नहीं होते, वैसे गुण की 'पर्याय' भी 'पर' के आश्रय कभी नहीं होती, ऐसा स्वभाव है। 'कारण -समयसार' अर्थात् रत्नत्रयस्वरूप जो शुद्धात्मा, उसकी भावना करने से ही केवलज्ञानादि-चतुष्टयरूप 'कार्यसमयसार' प्रगट होता है।

अंतर में ही परमात्मवस्तु निहित है, लेकिन जीव ने कभी अंतरदृष्टि करके उसका ध्यान नहीं किया, अपना शुद्धतत्त्व कभी लक्ष्य में नहीं लिया। इससे यहाँ उसको उपदेश देते हैं। शिष्य ने कहा था, हे स्वामी! 'मोह शीघ्र टूटे' ऐसा उपदेश मुझको दो। दूसरी चीज से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं। अपने शुद्धात्मा को मैं जानूँ और मेरा मोह जल्दी टूटे, ऐसे उपदेश की प्रार्थना है।

देखो, यह शिष्य की जिज्ञासा का प्रश्न! शुद्धात्मा को जानने के सिवाय दूसरा प्रयोजन जिसके चित्त में नहीं, ऐसे शिष्य को यहाँ समझाते हैं कि जिस तरह के परमात्मा सिद्ध लोक में रहते हैं, वैसा ही परमात्मा यहाँ देह में रहता है। 'जैसे अन्य परमात्मा हैं, वैसा ही परमार्थ से मैं हूँ', इसप्रकार नि:संदेह निश्चय करके हे जीव! अपनी आत्मा का तू ध्यान कर, पर के साथ संबंध छोड़ और 'स्व' से संबंध कर, अर्थात् अपनी परिणति को अंतर में झुका। परिणति को अंतर में झुकाते ही तेरा मोह टूट जायेगा, और परम आनंदमय आत्मा तेरे में ही तुझे दिखेगा।

यहाँ बताते हैं कि 'शुद्ध परिणति' से अभेदरूप ऐसे 'शुद्धात्मा' की निरंतर भावना करने

जैसी है। परभाव की भावना एक क्षण भी नहीं कर, पुण्य की अथवा उसके फल की भावना एक क्षण भी नहीं कर; परंतु शुद्ध आत्मा की ही भावना निरंतर कर। 'जैसी भावना वैसा भवन' अर्थात् 'शुद्धात्मा' की भावना से 'शुद्धतारूप परिणमन' होता है।

भावना क्या ? भावना 'विकल्प' नहीं है लेकिन उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें लीनता का बारंबार अभ्यास, उसका नाम 'भावना' है। 'शुद्ध आत्मा' की भावना जिसको निरंतर हो, उसको उसकी परिणति उसमें (शुद्धात्मा में) झुके बगैर रहती नहीं।

अरे प्रभु! तेरे में अपार ताकत भरी है, उसको स्वीकार कर, पुरुषार्थ को प्रगट कर। तेरी चैतन्यशक्ति के एक टंकार से मोह का नाश हो जाये, ऐसी तेरी ताकत है। अपनी शक्ति का तू भरोसा कर और उसमें उपयोग की एकाग्रता कर। उसमें तेरे को किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं।

अरे जीव! यह काया और शुभाशुभ आस्रव-कषायें तो अशुद्ध मलिन हैं, लेकिन अंदर रहा हुआ आत्मा अशुद्ध नहीं। वह तो पवित्र ज्ञान-दर्शन का पुंज है। जैसे रंगीन वस्त्र पहिनने से मनुष्य वैसा कुछ हो नहीं जाता, वैसे ही देह की मलिनता से आत्मा कुछ मलिन हो नहीं जाता। 'वस्त्र फटने से मनुष्य कुछ मर जाता नहीं, वैसे ही देहरूपी वस्त्र नष्ट होते ही आत्मा कुछ नष्ट होता नहीं।'—ऐसा विचारकर हे जीव! देहादि से भिन्न आत्मा को जान। इसमें महान प्रयत्न है।

अहा, जो बुद्धि अंतर में झुककर अखंड चैतन्य पहाड़ को धारण करे-उसकी ताकत की क्या बात ? जैसे कुन्दकुन्दस्वामी की अपार ताकत के विषय में जयसेनाचार्य कहते हैं—

जयउ रिसि पउमणंदी जेण महातच्च पाहुड सेलो।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ भव्व लोयस्स॥

उस ऋषि 'पद्मनंदि' की जय हो, जिसने महातत्त्व से भरे हुए प्राभृतरूपी पर्वत को बुद्धिरूपी सिर से उठाकर भव्यजीवों को समर्पित किया।

अंतर में अनंत चैतन्यशक्ति से भरा हुआ जो शुद्धात्मारूपी बड़ा पर्वत, उसके अंतर्मुख होकर जिस ज्ञान ने अनुभव किया, उस ज्ञान की क्या महिमा ? उस ज्ञान के समीप मोह टिक नहीं सकता। ऐसा अनुभव ज्ञान चौथे गुणस्थान से होता है। उसके बिना मोक्षमार्ग शुरु नहीं होता।

'आत्मा' और 'देह' अत्यंत जुदे हैं। देह और देह की क्रियायें सदा अजीव ही हैं। उसमें कभी जीव को धर्म नहीं होता तथा वह जीव के धर्म का कारण भी नहीं होता। जीव के सब धर्म

जीव में ही हैं, जीव का कोई धर्म अजीव में नहीं है। इसलिये हे जीव! देह के संबंध को तू अपना न समझ, अपने आत्मा को निरंतर देह से भिन्न ही देख।

देह से आत्मा की भिन्नता का भान कब हो? ज्ञान को अंतर में झुकाकर जब अतीन्द्रिय चैतन्य का स्पर्श करे, तब देहादि की एकत्वबुद्धि छूटे, और तब ही यथार्थ में देह से भिन्न आत्मा का जाना कहा जाये। श्वास का लेना, वचन का बोलना, ये सब क्रियायें देह के साथ संबंध रखती हैं। उनको जो अपनी मानता है, वह 'देह' को ही 'आत्मा' मानता है। अतीन्द्रिय चैतन्य वस्तु कुछ इन्द्रियज्ञान का विषय नहीं। आत्मा की क्रिया कौन सी? ज्ञानक्रिया। इस ज्ञानक्रिया द्वारा जो आत्मा को देह से भिन्न अनुभव करता है, वही सर्वज्ञ परमात्मा की परमार्थ स्तुति कर सकता है।

शरीर में (तथा रागादि में भी) एकत्वबुद्धिवाला जीव अतीन्द्रिय ज्ञानमय ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा की, अरहंतदेव की परमार्थस्तुति नहीं कर सकता, अरहंत के परमार्थस्वरूप को वह पहिचानता भी नहीं। स्वभाव-सन्मुख होते ही अरिहंतदेव वगैरह की सच्ची पहिचान होती है।

अरे जीव! इस देह में रक्त, माँस और हड्डी सिवाय दूसरा कुछ है? ऐसे अपवित्र वस्तु के पिंड को तू अपना मानकर उसमें मूर्छित हो रहा है, और शुद्ध-बुद्ध ऐसे अपने पवित्र चैतन्यस्वरूप को भूल रहा है। अरे, जहाँ राग की मलिनता भी तेरे स्वरूप में नहीं है, वहाँ यह 'विरूपता का पिंड' देह तेरे में कहाँ आया? देह से अत्यंत जुदा तू ज्ञायक मूर्ति है, ऐसा जानकर शीघ्र देह की मूर्छा छोड़ और आत्मा की भावना निरंतर कर। ऐसा करने से शीघ्र ही तेरा मोह टूट जायेगा और परम आनंदमय तेरा चैतन्यतत्त्व तुझको तेरे अंतर में ही दिखेगा।

एक बार सबका लक्ष्य छोड़कर तेरे अपने घर में तो देख! तुम प्रभु हो, तुम सिद्ध हो, प्रभु! तू अपने घर को देख, पर में न देख। पर में लक्ष्य कर-करके तो तू अनादि से भ्रमण कर रहा है, अब अपने अंतरस्वरूप की तरफ नजर तो कर! एकबार तो अंदर देख! अंदर परम आनंद का अनंत खजाना भरा हुआ है, उसे संभाल तो सही! एकबार जरा नजर उठाकर ऊपर की ओर तो देख, तुझे अपने स्वभाव का कोई अपूर्व परम सहज सुख का अनुभव होगा।

अनंतज्ञानी कहते हैं कि 'तू प्रभु है।'

प्रभु! अपने प्रभुत्व की एक बार हाँ तो कर।

कहानी १२वीं

२६ राजपुत्रों के साथ वज्रबाहु का वैराग्य

जिनके माता-पिता को सर्वज्ञ वीतराग कथित धर्म में अपार प्रेम था, बच्चों में भी था।

राजकुमार वज्रबाहु मनोदया रानी के साथ हाथी के ऊपर बैठकर नगरी की ओर जा रहे हैं, साथ ही उनका साला उदयसुंदर और अन्य २६ राजपुत्र हैं। वन में से जाते-जाते एकाएक वज्रबाहु की नजर ठहर गई... आश्चर्य से एक पेड़ की ओर एकटक देखते रहे।

उदयसुंदर ने आश्चर्य सहित पूछा, 'कुमारजी, क्या देख रहे हैं?'

कुमार ने अंगुली से दिखाते हुए कहा, 'देखो! पेड़ के नीचे वीतरागी मुनि विराजमान हैं... अहा! कैसी अद्‌भुत है उनकी अवस्था!! धन्य है उनका जीवन!! जो निराकुल होकर सुख के उपाय में लगे हैं।'

उदयसुंदर ने कहा : 'कुमारजी! कहीं आप भी इन्हीं की तरह न हो जाना!'

वज्रकुमार ने कहा : 'वाह भाई, मैं तो यही भावना भा रहा था... तुमने मेरे मन की बात जान ली; अब तुम्हारे मन में क्या है, वह बतलाओ?

'मेरी भी यही भावना है'—उदयसुंदर ने कहा और दोनों राजकुमार मुनिराज के चरणों के समीप गये... साथ ही छब्बीस राजपुत्र भी गये... मुनिराज के पास दीक्षा लेकर ये सभी मुनि हो गये... रानी मनोदया वगैरह भी संसार से विरक्त होकर अर्जिका हो गईं।

धन्य धन्य इन तत्त्वज्ञानी संसारविरक्त संतों को!

कोटा में श्री वीर संघ के तत्त्वावधान में जैनदर्शन शिक्षण वर्ग का

महत्वपूर्ण संयोजन

'केवल रवि किरणों से जिनका संपूर्ण प्रकाशित है अंतर'

इस देव-शास्त्र-गुरु की अनुपम पूजा के रचयिता, जैनधर्म के आदर्श मर्मज्ञ और मनोज्ञ वक्ता श्री जुगलजी जिनको आज सारा भारत का जैन समाज जानता है। जैनदर्शन शिक्षण वर्ग की महती आवश्यकता का अनुभव करके इस वर्ष कोटा नगर में भी दिनांक १ जून १९६७ से २५ जून तक श्री वीर संघ के तत्त्वावधान में एक जैनदर्शन शिक्षण वर्ग आयोजित किया गया। जिसमें प्रौढ़ वर्ग में उच्च शिक्षा प्राप्त ६५ पुरुष, महिलायें, कुमार एवं कुमारियां तथा बाल एवं शिशु वर्ग में १०५ शिक्षार्थी सम्मिलित हुए।

प्रौढ़ वर्ग में प्रात: श्रमण चिंतन धारा के मूल श्रोत अनेकांत, निमित्त-उपादान एवं षट् कारक तथा सायं अहिंसा, सत्य एवं अपरिग्रह पर शैक्षणिक पद्धति से धर्मरत्न बाबू जुगलकिशोरजी एव०ए० साहित्यरत्न द्वारा विस्तृत विवेचना होती थी। इस शिक्षण से आधुनिक बुद्धिजीवी युवक-युवतियों में जैन दर्शन में निहित चिरंतन सत्य के परिचय के साथ धार्मिक आस्था के रूप में एक नव चेतना का उदय हुआ। शिक्षण की अवधि में प्रत्येक रविवार को प्रात: सायं एवं मध्याह्न २ से ४ बजे तक विवेच्यमान विषय पर महिला वर्ग एवं पुरुष वर्ग में से ४-४ शिक्षार्थियों के ७-७ मिनिट भाषण होते थे और अंत में श्री युगलजी उनका मूल संशोधन करते थे। कुछ शिक्षार्थियों ने सम्यक् अनेकांत अहिंसा, एवं अपरिग्रह आदि विषयों पर निबंध रचनाएं भी की। दिनांक २४ जून को प्रात: प्रौढ़ वर्ग की परीक्षा भी हुई। संक्षिप्त किंतु सर्वांग उत्तर पद्धति के एक नये ढंग (Objective Type) के प्रश्न पत्रों की रचना की गई। प्रश्न पत्रों की यह शैली सभी विद्यार्थियों को प्रिय लगी, परीक्षा का परिणाम भी अत्युत्तम रहा।

शिशु एवं बाल वर्ग के लिए धार्मिक शिक्षण के साथ व्यावहारिक एवं सदाचार शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। धार्मिक शिक्षण पूज्य बाबू श्री ज्ञानचन्दजी सा०, सुश्री जैन धर्म विशारदा कनकप्रभादेवीजी साहित्य रत्न एवं सुश्री गुलाबबाई तथा व्यावहारिक एवं सदाचार शिक्षण सुयोग्य उत्साही युवक श्री छोटेलालजी जैन एम०ए० द्वारा सम्पन्न होता था। इस शिक्षण से बालकों में धर्म, सदाचार एवं व्यावहारिक संस्कारों का बीजारोपण हुआ।

शिक्षण काल में पुनीत पर्व श्रुतपंचमी भी बड़ा समारोह दिवस रहा। प्रात: वीणा पर

कुमारी सरोज द्वारा सुमधुर सरस्वती वंदना के उपरांत श्रुत एवं जीवन पर श्री युगलजी का भाषण हुआ, एवं पश्चात् श्री धवल, महाधवल, जयधवल, तथा श्रुतस्कंध मंडल विधान की बड़े हर्ष एवं उल्लास पूर्वक सामूहिक पूजा हुई। सभी नर-नारियों ने अपनी श्रद्धा एवं धन सविनय श्रुत देवता को समर्पित किये, संध्या को बालकों एवं शिशुओं के व्यावहारिक एवं सदाचार शिक्षण की एक प्रायोगिक (Practical) परीक्षा आमरसभात के भोजन के रूप में हुई। जो बा० ज्ञानचंदजी सा एवं श्री कजोड़ीलालजी सौगानी की ओर से किया गया। यह आयोजन उपयोगी होने के साथ बड़ा आकर्षक एवं मनोरंजक भी था। स्नेहसने बालकों की सभ्यता, स्वच्छता एवं भोजन करने की चतुराई वयस्क लोगों की स्पर्धा का विषय बनी हुई थी। एक थाली, एक गिलास, एक कटोरी, एक रूमाल एवं एक आसन प्रत्येक बालक घर से लाया था। बालकों की भोजनकला के संबंध में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि भोजन करने से पूर्व बालकों की थाली, वस्त्र एवं भोजन स्थल आदि की जो स्वच्छता थी, भोजन के उपरांत भी वह ज्यों की त्यों बनी रही। जूठन एवं अस्वच्छता का निशान भी न था। प्रत्येक बालक ने अपने-अपने बर्तन सूखी राख से स्वच्छ किये। बालकों एवं शिशुओं के द्वारा बर्तनों की यह स्वच्छता भी लोगों के आश्चर्य का विषय बन गई।

दिनांक २५ जून को शिक्षण वर्ग समापन समारोह सम्पन्न हुआ। प्रौढ़ शिक्षार्थी एवं सुयोग्य कर्मठ युवक श्री मानमलजी एम०ए०, श्री छोटेलालजी एम०ए० तथा अध्यात्मस्नेही अध्यापिका सुश्री कनकप्रभा देवीजी साहित्य रत्न एवं अध्यात्म रसिक श्रीमती मांगीबाई एवं निर्मलकुमारी बी०ए० के शिक्षण वर्ग की उपयोगिता एवं अनुभव पर सुंदर भाषण हुए। श्री पूज्य बाबू ज्ञानचंदजी सा० के कर कमलों द्वारा प्रौढ़ एवं बाल वर्ग के शिक्षार्थियों को पारितोषिक प्रदान किये गये। अंत में इस अवसर पर प्रकाशित विविध शिक्षामय एक-एक पत्र एवं उदारमना श्रीमती सेठानी सा० बसंतीबाई पोरवाल की ओर से प्रत्येक बालक को आम उपहारस्वरूप वितरित किये गये।

शिक्षण वर्ग के इस कार्यक्रम में अनेक स्वाध्याय प्रेमी सज्जन भी सम्मिलित होते थे। श्री पर्यूषण पर्व में भी इसी प्रकार १० दिवस के लिये प्रौढ़ शिक्षण की योजना है। तत्त्व प्रेमी विद्वान एवं त्यागी वर्ग से इस अवसर पर कोटा पधारने की सानुरोध प्रार्थना है।

लालचंद जैन, बी०ए०, मंत्री
श्री वीर संघ, कोटा

धार्मिक प्रभावना के समाचार

खंडवा (म०प्र०)—जैन समाज के आमंत्रण से श्री पं० नेमीचंदजी रखियाल निवासी यहाँ पधारे। २१ दिन तक हमेशा दोनों टाइम प्रवचन मोक्षमार्गप्रकाशक अध्याय ४-७ पर देते रहे, उपरांत जैन सिद्धांत प्रवेशिका तथा छहढाला की क्लास भी २० दिन तक चलाई। आपने काफी उत्साह और श्रम सहित सर्वज्ञ वीतराग कथित निश्चय-व्यवहारनय और उनके विषय, साधक दशा में क्या होता है, सच्चे पुरुषार्थ, सात तत्त्वों की भूलें, चार अभाव आदि मुख्य-मुख्य बातें बहुत ही अच्छी तरह से सरल करके समझाई, गजब का काम किया। सोनगढ़ के बारे में फैलाई हुई गलत फहमी वश बहुत लोगों की जो गलत धारणा थी, आपने दूर की, पुण्य की मर्यादा सांगोपांग समझा दी। आपने उ०प्र०, म०प्र० और राजस्थान में घूमकर आज जो धर्म के नाम पर विपरीतता चल रही है, वह भी निर्भीकता से बताकर सोनगढ़ में कोई नया पंथ नहीं है। प्राचीन दिगम्बर जैन आम्नाय में ही सब मानते हैं और रात्रि भोजनादिक का त्याग, दर्शन-पूजा-संयम नित्य नियम का कितना सुंदर पालन होता है, यह भी बताया। अपनी अत्यंत सरल स्पष्ट शैली-विचक्षण बुद्धि से आपने जैन धर्म के शास्त्रों का सच्चा रहस्य समझाया व जैनधर्म के तत्त्व जो अंधियारे में पड़े थे, उनको उजियाले में लाकर हम सब लोगों पर महान-महान उपकार किया है। वास्तव में नेमिचंदभाई ने कमाल कर दिया है। नोंध-७ पेज भरकर भाई श्री के बारे में सुंदर विशेषता द्वारा जैनधर्म की प्रभावना के अच्छे प्रभावक प्रसिद्ध करके योग्य लिखा है किंतु 'कहत कवन नहीं लागत नीका'। खंडवा के लोगों के दिल को उन्होंने जीत लिया, प्रवचन और स्पष्ट विवेचन सुनकर सब लोग गदगद हो जाते थे, बहुत खुशी मनाते थे, बहुत प्रभावित हुए। नेमीचंदभाई ने जो २१ दिन तक असाधारण धर्म प्रेमवश जो उपकार किया है, उनके लिये सब समाज श्री नेमीचंदजी के तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट के प्रचार विभाग व पूज्य परमोपकारी कानजीस्वामीजी के अत्यंत आभारी हैं। लि० फकीरचंद जैन वकील खंडवा दिगम्बर जैन समाज की तरफ से तारीख ३३-७-६७ (नोंधी श्री नेमीचंदजी भाई आजकल उज्जैन में हैं।)

मंदसौर (म०प्र०)—यहाँ प्रहलादजी ने दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर बनाया है, उसका उद्घाटन फतेपुर-गुजरात निवासी श्री बाबूभाई की प्रेरणा से पंडित श्री हुकमचदंजी

(अशोकनगर) के हाथ से तारीख २४-७-६७ को बहुत आनंद से हुआ और उनमें श्री जिनवाणी की स्थापना हुई, मांगलिक कार्य पश्चात् पंडितजी के प्रवचन हुए। समाज को बहुत आनंद हुआ, तीन प्रवचन देकर पंडितजी इंदौर पधार गये। *—मंत्री, मुमुक्षु मंडल मन्दसौर*

जयपुर (खानियां) तत्त्वचर्चा, भाग १-२

बड़े आकार की दो पुस्तक पृष्ठ ८५०, मूल्य १६-०, पोस्टेज अलग, प्रकाशक टोडरमल स्मारक ग्रन्थमाला, ठि० पंडित टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, गाँधीनगर रोड, बापूनगर जयपुर-४ (राज०)। आचार्य श्री शिवसागर मुनि महाराज के सामने दो पक्ष के विद्वानों द्वारा जो लिखित चर्चायें हुई थी, वही इस ग्रंथ में छपवा दी हैं। मध्यस्थ होकर जिज्ञासुगण स्वतन्त्रतया निर्णय करें। यह पुस्तक सोनगढ़ से भी मिल सकती है।

जैनदर्शन शिक्षण शिविर

सोनगढ़—हर साल माफिक जैनदर्शन शिक्षण शिविर इस साल भी श्रावण सुदी ५ तारीख १०-८-६७ से २९-८-६७ भाद्रपद बदी ९ तक २० दिन चलेगा। इससे लाभ लेने के इच्छुक जैन बंधुओं को सादर हार्दिक आमन्त्रण है। आने के पूर्व पत्र द्वारा सूचना भेजना जरूरी है। यह कक्षायें मात्र पुरुषों के लिये हैं।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मधर्म के ग्राहकों से निवेदन

(१) आत्मधर्म कार्यालय को जब आप अंक के संबंध में कुछ पत्र लिखें, तब साथ-साथ आपका ग्राहक नंबर, पूरा नाम, पता अच्छे अक्षरों में साफ-साफ लिखें, ताकि पत्र की कार्यवाही शीघ्र व अच्छी तरह की जा सके।

जिनका पत्र उपरोक्त सूचनानुसार नहीं आवेगा, उनके पत्र पर ध्यान देने में हम असमर्थ रहेंगे। आशा है ग्राहक नं० अवश्य लिखते हुए पत्र व्यवहार करें।

(२) निम्न सज्जनों का पोस्ट किया हुआ अंक पते की गड़बड़ी से वापिस आया है। कृपया वे सज्जन, एवं जिनको अंक न पहुँचता हो, वे भी अपना नाम, पता, ग्राहक नं० साफ-साफ लिखकर भेजें।

नानालालजी महेता हाईकोर्ट एडवोकेट, रतलाम
कैलाशचंदजी जैन ठि० पूनमचंद एंड कं०, बुरहानपुर
श्री पन्नालालजी गंगवाल, कलकत्ता
श्री मानमलजी जैन ठि० कैलाशचंद रूपचंद, कलकत्ता
श्री रामचंदजी विजयकुमारजी, कलकत्ता-६
श्री महावीर स्टोर, कलकत्ता-७
हिंदवाच कं०, एम.जी. रोड, रायपुर (म.प्र.)
भंवरलालजी ईश्वरचंदजी चौधरी, मेरठ
माणिकलालजी ठि. दैदोरजी डूंगरवाला, मंदसौर
श्री म. ब्र. खेमचंदजी बरैय्या जैन, मंदसौर
नरेशचंदजी जैन, पिलानी (म.प्र.)
टीकारामजी कपूरचंद जैन, दाहोद (म.प्र.)
वकील रामचंद्र डी. शुक्ल, दाहोद (म.प्र.)
प्रेमचंदजी पंचरत्न, सनावद
रतनचंदजी बाबूलाल जैन भिंडवाले, बंबई-२
गुलाबचंदजी काशलीवाल, बंबई-२
नाथूमलजी, सहारनपुर (म.प्र.)
निर्मलप्रसादजी जैन, दिल्ली
रातनलालजी श्रीपालजी जैन, दिल्ली
प्रतापचंदजी जैन, दिल्ली
त्रिलोकचंदजी जैन, नई देहली
उग्रसेनजी जैन, नई देहली-५
विमलप्रसादजी, देहली-६
रतनबाई जैन, महिला संघ, वाराणसी (यू.पी.)
शांतिलालजी काशलीवाल, गौहाटी (आसाम)
जगन्नाथप्रसाद मदनलाल ब्राह्मण, सिहोरा (सागर)
मलहमरायजी विजयकुमार जैन, सागर
भंवरलालजी चौधरी, चौधरी मोहल्ला, मारोठ
अगरचंदजी भैरोंदानजी सेठिया, बीकानेर (राज.)

समयसार कलश टीका (दूसरी आवृत्ति)

जैन धर्म के मर्मी श्री राजमलजी पांडे कृत प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों से मिलान करके आधुनिक राष्ट्रभाषा में सुंदर ढंग से बड़े टाइप में उत्तम प्रकाशन। आत्महित का जिसको प्रयोजन हो, उनके लिये गूढ़ तत्त्वज्ञान के मर्म को अत्यंत स्पष्टतया खोल-खोलकर निर्मल स्वात्मानुभूतिमय उपाय को बतलानेवाला यह ग्रंथ अत्यंत रोचक, अनुपम ज्ञान निधि है। पंडित जी ने विक्रम संवत् १६१५ पूर्वाचार्यों के कथनानुसार आध्यात्मिक पवित्र विद्या के चमत्कारमय यह टीका बनाई है। पृष्ठ संख्या २९० बड़ी साइज रेगजिन कपड़े की उत्तम जिल्द लागत ५.०) होने पर भी घटाया हुआ मूल्य २.७५ है। पोस्टेज अलग।

पता – श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री समयसारजी परम अध्यात्म-शास्त्र

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत सर्वोत्तम अध्यात्मशास्त्र, श्री अमृतचंद्राचार्य कृत संस्कृत टीका सहित हिन्दी अनुवाद।

यह अद्वितीय जगतचक्षु समान आध्यात्मिक ग्रंथाधिराज है, परिभाषण पद्धति से जो सूत्र रचना हो, वह सर्वोत्तम मानी जाती है, जैसी मूल सूत्रों की सर्वोत्तम रचना श्री कुन्दकुन्दाचार्य की है, ठीक वैसी ही आत्मख्याति नामक टीका सर्वोत्तम है, वीतरागता, और स्वतंत्रता ग्रहण करने की रुचि से पढ़ने से उसका रसास्वाद आता है।

जिसमें ज्ञानी-अज्ञानी जीवों का स्वरूप, भेदविज्ञान, नवतत्त्वों का रहस्य खोलनेवाले सात अधिकार, कर्ताकर्म, सर्वविशुद्धज्ञान, अनेकांत, ४९ शक्ति, मोक्षमार्ग का स्वरूप, साध्य-साधक भाव का स्वरूप आदि का सुस्पष्ट वर्णन है, उस पर सातिशय प्रचंड निर्मल तत्त्वज्ञान के धारक अजोड़ महर्षि श्री अमृतचंद्राचार्य की सर्वोत्तम संस्कृत टीका है। अत्यंत अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) जीवों को भी जिसमें समझाया गया है। हिन्दी अनुवाद, तीसरी आवृत्ति, इस ग्रंथ में गाथाएँ लाल स्याही से छपी हैं, कुछ गाथाएँ सुनहरी कलर में हैं। बढ़िया कागज पर सुंदर ढंग से छपने पर भी मूल्य लागत से भी बहुत कम रखा है, सभी जिज्ञासु यथार्थतया लाभ लेवें, ऐसी भावना वश इस ग्रंथाधिराज का मूल्य मात्र ५) रुपया रखा है। पोस्टेजादि अलग। पृष्ठ संख्या ६४१ बड़े आकार की है।

पता – श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्रीमत्भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित

श्री नियमसारजी शास्त्र

सर्वज्ञ वीतराग कथित महान आध्यात्मिक भागवत् शास्त्र, ११ वीं शती के अध्यात्मरस के सर्वोत्तम कवि शिरोमणि श्री पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिवरकृत संस्कृत टीका तथा अक्षरश: प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद सहित शास्त्र जिसकी तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा काफी जोरों से माँग है, पूर्णरूप से संशोधित, यह ग्रंथ महान, अनुपम, पवित्र तत्त्वज्ञान की अपूर्व निधि समान है। पृष्ठ संख्या ४१५, बड़ी साइज में, रेगजीन कपड़े की सुंदरतम जिल्द। मूल्य बहुत कम कर दिया है मात्र ४) पोस्टेजादि अलग। देश-विदेश में, कालेज-विश्वविद्यालयों में-सर्वत्र सुंदर प्रचार के योग्य अत्यंत सुगम और सब प्रकार से सुंदर ग्रंथ है। जिज्ञासुगण शीघ्र आर्डर भेजें।

श्री प्रवचनसार शास्त्र

यह शास्त्र भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत पवित्र अध्यात्मसाररूप महान ज्ञान निधि है। जिसमें सातिशय निर्मल ज्ञान के धारक महामहर्षि श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने सम्यग्ज्ञानदर्शन (ज्ञेय) और चारित्र अधिकार में स्वानुभवगर्भित युक्ति के बल द्वारा सुनिश्चित द्रव्य-गुण-पर्यायों का विज्ञान, सर्वज्ञ स्वभाव की यथार्थताप, स्व-पर ज्ञेयों की स्वतंत्रता, विभाव (अशुद्धभाव) की विपरीतता बताकर अंत में ४७ नयों का वर्णन भी संस्कृत टीका द्वारा ऐसे सुंदर ढंग से किया है कि सर्वज्ञ स्वभाव की महिमा सहित विनय से स्वाध्यायकर्ता अपने को धन्य माने बिना नहीं रह सकते।

श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने समस्त जिनागम के साररूप रहस्य को खोलकर धर्म जिज्ञासुओं के प्रति परमोपकार किया है। उसी टीका का प्रामाणिक अनुवाद, बड़े टाइप में उत्तम छपाई, बढ़िया कागज, रेगजिन कपड़े वाली बढ़िया जिल्द, प्रत्येक गाथा लाल स्याही में छपी है। सभी जिज्ञासु यथार्थ लाभ लें ऐसी भावनावश मूल्य लागत से भी बहुत कम मात्र ४) रुपया है। पृष्ठ ४७०, पोस्टेज अलग।

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत

पंचास्तिकाय संग्रह यानी पंचास्तिकाय शास्त्र

इसका अक्षरश: ठीक रूप में सांगोपांग अनुवाद श्री हिम्मतलाल जे.शाह बी.एस.सी. द्वारा प्रथम बार ही हुआ है, जो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों को एकत्र करके पाँच साल तक उत्तम परिश्रम द्वारा आचार्यवर श्री अमृतचंद्र कृत सं० टीका का अक्षरश: अनुवाद तैयार हुआ है, यह ग्रंथ दूसरी बार बड़े टाइप में सर्वप्रकार सुंदर संशोधित व सं० टीका सहित छपा है, टीका के कठिन विषयों पर अच्छा प्रकाश डालनेवाला विस्तृत फुटनोट भी दिया है, बढ़िया कागज, सुंदर छपाई, और रेगजीन कपड़े की सुंदर जिल्द सहित सर्व प्रकार से मनोज्ञ और महान ग्रंथ होने पर भी मूल्य ३.५० है। पोस्टेजादि अलग पृ०सं० ३१५, [जैन-जैनेतर समाज में अवश्य प्रचार में लाने योग्य सुगम और उत्तम साहित्य है।]

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री टोडरमल ग्रंथमाला जयपुर के

नये प्रकाशन

१.	श्री टोडरमल जयन्ती स्मारिका	२)
२.	जयपुर (खानियां) तत्त्वचर्चा, भाग १ व २, महत्त्वपूर्ण बड़ा ग्रंथ	१६)
३.	अध्यात्म संदेश (टोडरमलजी कृत रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर विस्तृत प्रवचन)	१)५०
४.	मोक्षमार्ग प्रगट करने का उपाय तत्त्व निर्णय	)१५
५.	शास्त्रों का अर्थ करने की पद्धति	)२०
६.	मोक्षमार्गप्रकाशक	२)
७.	पद्मनंदी पंचविंशतिका में से ऋषभ जिनस्तोत्र सार्थ	.....
८.	पंडित टोडरमलजी का परिचय	.....
९.	अमृत वाणी	.....

उपरोक्त ग्रंथ जयपुर में दिनांक १३-३-६७ को टोडरमल स्मारक भवन के उद्घाटन अवसर पर प्रकाशित हुए हैं, स्वाध्यायप्रेमी मुमुक्षु बन्धुगण उक्त ग्रंथ मँगाकर ज्ञान यज्ञ में सहयोग देवें।

मंगाने का पता—

श्री टोडरमल स्मारक भवन

ए-४, गाँधीनगर रोड, बापूनगर

जयपुर-४ (राजस्थान)

मोक्षमार्गप्रकाशक (आधुनिक हिन्दी भाषा में)

आचार्यकल्प श्री पंडित प्रवर टोडरमलजी कृत यह उत्तम रचना है। मूल स्वहस्त लिखित प्रति द्वारा अक्षरश: अनुवाद कराके, मिलान कराके, बड़े भारी श्रमपूर्वक और अपूर्व उत्साह द्वारा यह प्रकाशन छप चुका है और पंडित जी कृत रहस्यपूर्ण चिट्ठी तथा कविवर पंडित बनारसीदासजी कृत परमार्थ वचनिका; निमित्त-उपादान चिट्ठी यह तीन अधिकार भी मूल प्रतियाँ प्राप्त करके प्रकाशन में लगा दी हैं। प्रथम से ही इनके १०५०० संख्या के ग्राहक हो चुके हें। वे सब साधर्मीजन तीव्र जिज्ञासा सहित भारी तकादा कर रहे हैं, अब उन्हें आर्डर के माफिक प्रतियाँ शीघ्र ही भेजी जा रही हैं। लागत मूल्य ४.५० हुआ है किंतु इसका उत्तम ज्ञान प्रचार हेतु मात्र २) मूल्य रखा गया है। जिन्हें पुस्तक चाहिये वे शीघ्रता से नये आर्डर बुक करा देवें।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन, जो सर्वज्ञ वीतराग कथित मोक्षमार्ग (सुख का उपाय) समझने के लिये परमोपकारी हैं, उनका अपूर्व यथार्थ लाभ लेने के लिये निम्नोक्त ग्रंथों का —

अवश्य स्वाध्याय करें

श्री समयसार शास्त्र	५-०
अष्टपाहुड़ शास्त्र	प्रेस में
श्री प्रवचनसार शास्त्र	४-०
श्री नियमसार शास्त्र	४-०
श्री पंचास्तिकाय संग्रह शास्त्र	३-५०
समयसार प्रवचन, भाग १-२-३	अप्राप्य
समयसार प्रवचन भाग ४	४-०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]	
आत्मप्रसिद्धि	अप्राप्य
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०), पृष्ठ-९००	५-०
स्वयंभू स्तोत्र	०-५०
मुक्ति का मार्ग	०-५०
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१-०
'' ''द्वितीय भाग	२-०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १,२,३ प्र.	०-६०
योगसार-निमित्त उपादान दोहा, बड़ा टा.	०-१२
श्री अनुभवप्रकाश (दीपचंद्रजी कृत)	०-३५
श्री पंचमेरु पूजा संग्रह आदि	१-०
बृ.दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन पूजा	०-७५
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	छपेगा
अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१-५०
मोक्षमार्गप्रकाशक (श्री टोडरमलजी कृत) जिसमें पीछे से किसी के द्वारा बढ़ाये कथन शामिल नहीं किये गये हैं, मूल में जो कथन है वही आधुनिक भाषा में	२-०
समयसार कलश टीका (पं. राजमल्लजी पांडे कृत) आधुनिक भाषा में	२-७५
जैन बाल पोथी	०-२५
छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०-१५
छहढाला (नई सुबोध टी.ब.) सचित्र	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	अप्राप्य
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	अप्राप्य
जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	अप्राप्य
अपूर्व अवसर अमर काव्य पर प्रवचन प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा व लघु सामा.	प्रेस में
भेदविज्ञानसार	अप्राप्य
अध्यात्मपाठ संग्रह	४-०
वैराग्य पाठ संग्रह	१-०
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०-१५
स्तोत्रत्रयी	०-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-२५
'आत्मधर्म मासिक' इस एक वर्ष के लिये	२-०
'' पुरानी फाईलें सजिल्द	३-७५
शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०-१२
जैनतत्त्व मीमांसा	१-०
बृ०मंगल तीर्थयात्रा सचित्र गुजराती में १८) ग्रन्थ का मात्र	६-०
अभिनंदन ग्रंथ	७-०

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)

प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।